नई कहानियाँ



इस अंक में

शैलेश मटियानी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, राजेश, गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, खदीजा मस्तूर, अनादि मिश्र, सूरज करेशा, श्रीकांत चौधरी, जॉन गैलिको, प्रेमिन्द्रा तथा अन्य आकर्षक स्तंभ



क्या यह कहना ठीक है कि ज़्यादा बच्चे हों तो भविष्य में आमदनी भी ज़्यादा होगी?

अक्सर कहा जाता है बच्चा अपने साथ दो हाथ ले कर पैदा होता है।

लेकिन याद रहे कि आदमी खाता-पीता तो जीवन भर है और उपजाने का काम कुछ वर्षों तक ही कर पाता है।

नये तरीक़ों से आप उत्पादन बढ़ा सकते हैं। लेकिन इनके इस्तेमाल के लिए अच्छी शिक्षा और कुशलता की ज़रूरत है। एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति ज़िन्दगी में अनपढ़ों से सदा अच्छा रहता है।

अगर आपके ज़्यादा बच्चे होंगे तो अच्छी शिक्षा और ख़ुराक देने में आपको काफ़ी दिक़्क़त होगी।

सीमित संख्या में पढ़े लिखे और सेहतमन्द बच्चे, बहुत से अनपढ़ और कमज़ोर बच्चों से कहीं ज़्यादा कमा सकते हैं।

davp 72/382

सम्पादक
प्रमोद सिनहा
सहायक
श्रीमती संतोष शर्मा
अजित कुमार सिन्हा

नई कहानियाँ

वर्ष १३ अंक ८ दिसम्बर १९७२

सम्पादकीय कार्यालय
६८३/८०१ पुराना कटरा
इलाहाबाद—२

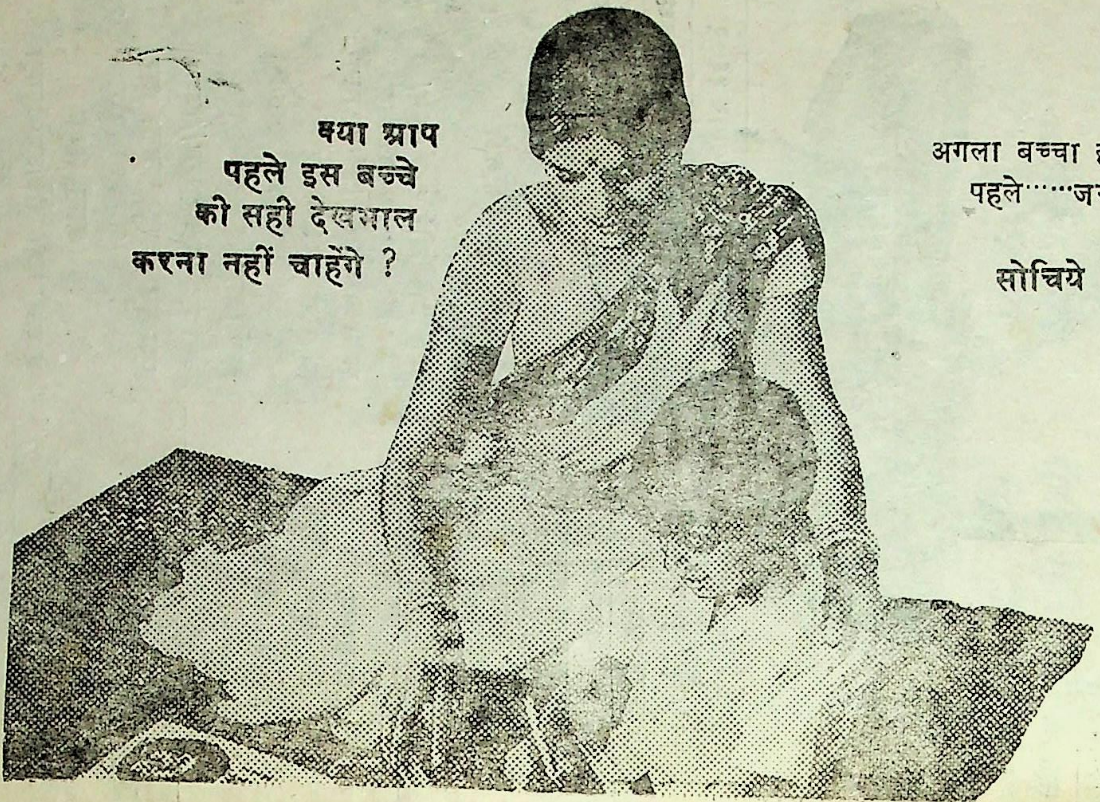
व्यवस्थापकीय कार्यालय
१९, कमला नेहरू रोड
इलाहाबाद
फोन नं० ३५१०

प्रकाशक
ऊषा सिनहा
शकुन्तला प्रकाशन
इलाहाबाद—२

मुद्रक
अरविन्द प्रिंटर्स
२०, डी बेली रोड, इलाहाबाद—२

एक प्रति १.०० पैसे
वार्षिक मूल्य
भारत : १२.००
विदेश : २४.००

क्या आप
पहले इस बच्चे
की सही देखभाल
करना नहीं चाहेंगे ?

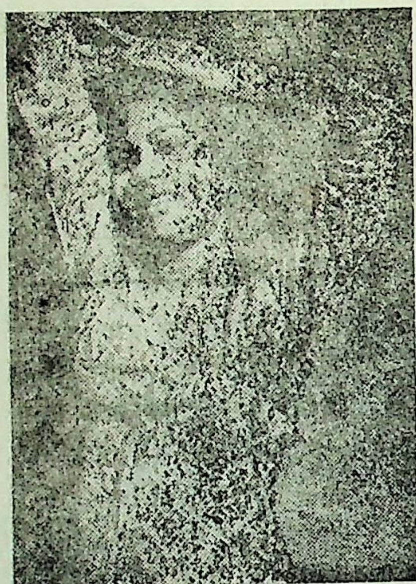


अगला बच्चा होने से
पहले……जरा

सोचिये

सूचित करते हुए हमें दुःख है कि हिन्दी के बहुचर्चित और लब्ध-प्रतिष्ठित कथाकार श्री मोहन राकेश का ४८ वर्ष की उम्र में दिनांक ३-१२-७२ को अचानक हृदय गति रुक जाने से देहान्त हो गया।

श्री राकेश की सोलह प्रकाशित कृतियाँ हैं और कथाकार तथा नाटककार के रूप में इनकी उपलब्धियाँ समान हैं। हम नई कहानियाँ एवं उसके परिवार की ओर से श्री मोहन राकेश की दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये ईश्वर से कामना करते हैं।



संतपिता आप कब तक वापस लौटेंगे ?

'मैं प्रतीक्षा में हूँ।' यह कहना मात्र पर्याप्त नहीं ही होगा।

संतपिता, यह तो मुझे मानना ही होगा कि दूसरों की दया और कारुणिकता के प्रदर्शन से और ज्यादा भयावह हो जानेवाली आत्मयंत्रणाओं के क्षणों में दुर्लभतम जो चीज होती है, वह है सच को बर्दाश्त करनेवाला आदमी या 'कॉस' की प्रतीति। मैं इस वक्त कितने सन्नाटेदार बियाबान में पड़ी हुई हूँ, बाँस की ठीक से पकड़ में न आने वाली गंध से भरे हुए इस छोटे-से मचाननुमा मकान में। यह घर बदलता जाता है, और पिछले दिनों से लगातार आपको मैं याद करती हूँ, तो लगता है, सच के आ पड़ने पर बर्दाश्त करना सम्भव है।

लेकिन सिर्फ बर्दाश्त करना ही? इससे आगे कहीं कुछ और क्या यह सब इस बाँस की गंध की तरह ही रह जाएगा? रहता आया है? अपने शरीर पर की सम्पूर्ण त्वचा के एक आँख की तरह चौकन्ना हो चुकने के बावजूद भी...?

कैसा विचित्र संयोग है, संतपिता आप कहा करते थे। शायद, यह सच भी

था कि जानवरों में सिर्फ गंध को महसूस करने की प्राकृतिकता होती है। मगर इस वक्त अपनी सम्पूर्ण प्राकृतिकता में यह आपका सेवक गुटांगों मेरी कमर में अपना आदिवासीपन की वन्य किस्म की मांसलता से भरा-भरा हाथ डाले हुए है। इसके बायें पाँव का अँगूठा मेरी दायीं पिंडली में जैसे गड़ा हुआ है। नाक मेरी गर्दन के पीछे के बालों में किसी नेवले के द्वारा थकाकर चूर कर दिये गये कोबरा साँप की साँसों की तरह एक परास्तता में डूब चुकी है। मैं इस वक्त किसी आवाँगार्द फ्रांसीसी चित्रकार के द्वारा अपने कैनवास पर लिटा दी गई 'जिप्सीगर्ल' कैसे वस्त्र विहीन औरतपन में पसरी हुई हूँ। सम्भव हो सकता है, ऐसी भयंकर आत्म-यंत्रणाओं में बदलने की तैयारी में रोम-रोम में रेंगते हुए इस 'सुख' पर से आँख हटाना बर्दाश्त न किया जा सके।

शैलेश मटियानी

मिस्टर जोजफ का कहना है कि 'तुम कभी नहीं उठ पाने की हद तक गिर चुकी हो।' यही बात, शायद मिशन के दूसरे लोगों से भी 'वह' सर्वनाम लगाकर कह चुके होंगे! ऐसी तैयारी उनमें उसी वक्त दिख गई थी। उनके चेहरे पर 'पाप को पकड़ लेने' की जैसी सतर्कता और उत्तेजना को फैलते हुए देखना आसान था। उस वक्त मिस्टर जोजफ शिकारी कुत्ते की-सी स्फूर्ति में थे। गंध को महसूस कर चुकने की प्राकृतिकता से उत्फुल्लतन की हद तक मिनमिनाता हुआ उनका चेहरा और उतावली सड़ी और चींटियों से भरी हुई डबलरोटी को फेंकते हुए घरेलू और निहायत कंजूस किस्म की औरतों की आँख में जो मदेक्षपना आ जाता है। वैसा ही, मिस्टर जोजफ लग रहा था।

शायद आप यह कहना ही चाहते.



होंगे कि—'बेटी जेनी, उसने कहा है, नफ़रत से भरी हुई आँख को बन्द कर लो उसको दूसरों में दिखाई देने वाली बदसूरती, क्रूरता और शैतानियत की तरफ से लौटाकर, अपने भीतर की खूबसूरती और परमपितामयता की ओर ले जाओ और प्रतीक्षा करो। प्रतीक्षा करो कि वह तुमसे कहे, हाँ, अब तुम दूसरों को देख पाने के योग्य हो चुके हो।'

मगर संतपिता, इस तरह के आप्त वचनों में सिमटकर तो सारी 'पीड़ा, सारी, तिरस्कृतता और सारी पतनशीलता में या इनसे चूने वाली घृणा कितनी अजीब है। वन्य फूलों की-सी गंध की तरह अलौकिक और खूबसूरत हो चुकनेवाली यंत्रणाओं को आप्तवचनों में निचोड़ लेना, विसाक्त रक्त को शरीर से बाहर निकाल चुकता है। मगर जो घृणा, पाशविकता, धूर्तता और चालाकी आदमी के भीतर मांसखोर गिद्धों की तरह झपट्टे मारती है और नोंच डालती है।

मेरा सारा भीतर दूसरों के हवाले हो चुका होगा और अब वह समय दूर नहीं है। तब मेरे लिये यह सहना कि गुटांगों की बाहों में कसे हुए मेरे चेहरे पर मिस्टर जोजफ थूकते हुए से निकल गये हैं और मेरे इन शब्दों ने मेरे समूचे शरीर में से साही के कांटों की-सी तीव्रता और बोधकता में निकलकर उनके कानों को भर दिया है और अब दूसरों आगे का मेरा कोई शब्द उन्हें सुनना नहीं है।

संतपिता, अपने वचन की सारी सच्चाइयां अश्रव्य हो चुकतीं, पर मेरे लिये घृणा करने से बचने की गुंजाइश खत्म हो चुकी है।...... और थके हुए वन्य पशु की तरह पसरा हुआ यह गुटांगो अभी फिर उठेगा, तो मुझे पागलों की सी बदहवासियों में फिर चूनेगा। काफी दिनों तक यह मुझसे भयभीत रहा। इसमें अब अजीब-सी अल्हड़ता आ चुकी है। यह घृणा को इसकी क्रूर वास्तविकताओं में नहीं ले पायेगा। मिस्टर जोजफ अगर इसे लताड़ेंगे और धिक्कारेंगे और नौकरी से निकाल देने की धमकियाँ देंगे, तो भी इसको सिर्फ 'साबा, साबा' घिघियाते हुए देखना, इससे बड़ी नारकीयता मेरे लिये और कुछ हो नहीं पाएगी। निर्णय मुझे तो लेने होंगे, विषैले तीरों की चपेट से बच सकने की-सी बदहवासी में। कहीं शायद महसूस नहीं होगी। क्या सिर्फ प्रतीक्षा शब्द का उच्चारण या स्मरण पर्याप्त होगा? कोशिश तो करूँगी। मुझे मालूम है, लौटते हुए भी पहले आप पालम पर उतरेंगे। अभी काफी समय है। सिर्फ मुझे ही नहीं, दूसरों को भी जब तक सिर्फ आपकी प्रतीक्षा है और इसमें दूसरे लोग निर्णय नहीं लेंगे उन्हें अपना निर्णय आपके कानों में उँडेलने की प्रतीक्षा है। निर्णय के वचन बनकर फूट पड़ने की हद तक पहुँच जाने तक का जो समय मेरे लिए है। मेरे कानों में तुम कभी नहीं उठ पाने की हद तक गिर

चुकी हो यह रहने में टँगे हुए घण्टे की तरह बजता रहेगा। कोशिश मेरी समझ में नहीं आता है कि अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ उठने की कोशिशों के अलावा यह प्रतीक्षा—जैसी चीज मेरे लिये भी क्यों रह गई है ?

कुछ चीजें ऐसी होती हैं, जिनकी शुरुआत की जाती है और फिर धीमे-धीमे किसी निर्णय पर पहुँच जाता है। गुटांगों और मेरे बीच के सम्बन्ध जैसी चीज की शुरुआत ही मेरे इस निर्णय में से हुई कि नहीं, पहल मुझे करनी होगी।

आपको तो संतपिता, याद भी होगा। आपके ज्यादा निकट तो हम दोनों ही हुआ करते थे। गुटांगों और मैं। जिन दिनों इसे अपनी निजी सेवाओं के लिये चुना था, कैसी उपकृतता में यह डूबा रहता था ? मैंने इसे आपके पाँवों पर से जूते-मोजे उतारते हुए प्रार्थना की-सी मुद्राओं में देखा है। सभ्यता जिन लोगों के भीतर के अछूतेपन और अरण्यता को चाह चुकी होती है। गुटांगों में जो श्रद्धा विगलितता थी, और है…। दूसरों की शरण्यता में से अपने अस्तित्व के प्रति उत्फुल्ल होने बुद्धिविहीन सात्विकता। गुटांगों में अब भी जो—कुछ है, सिर्फ पशुओं में रह गया होगा। हालाँकि मिस्टर जोजफ—जैसे जानवरनुमा आदमी में नहीं। मुझे क्षमा करेंगे, संतपिता ! मिस्टर जोजफ का जिक्र आयेगा और मैं घृणा करूँगी। इस तरह लोग किसी की भी औरत होने की सम्पूर्णताओं को अपनी शिकारी कुत्ते की-सी आँखों से चाट डालते हैं। मिस्टर जोजफ अपने जिस्म के बेडौलपन और चेहरे पर के खोखलेपन में से कभी कह नहीं पाये कि 'मिस बीना, मैं तुमसे, मैं तुमसे…' मगर गुटांगों का मुझे बाँहों में भरे हुए होना बांहों में भरे हुए होना और……।

मिस्टर जोजफ और मुझमें एक जगह समानता है। असमर्थता दोनों ओर है। गुटांगों के प्रति मेरे प्यार को सहने में वो नहीं 'मैं असमर्थ हूँ' अपने प्रति उनकी उस शिकारी कुत्ते की हाँफती हुई-सी जीभ में से चूती हुई लार—जैसी नफरत को मैं नहीं सह सकती।

मैं शायद, बहक गई हूँ। निर्णय से शुरू करने की बात को वचन से परिभाषित करना हुआ होता, तो मैं भी घुटने टेक 'कनफेस करती, प्रार्थनायें और पश्चाताप करती और फिर खुद ही ओढ़ ली गई क्षम्यता में से मिस्टर जोजफ के घुटनों से बित्ते-भर के फासले पर झुके हुए 'घुटने और 'मैरिमेज सेरा-मनी' के कोलाहल में डूबता हुआ अरण्य जीवन कितना कष्टदायक है।

नागालैण्ड की वन्यताओं में इर्द-गिर्द समुद्र के किनारे लंगर डाले पड़े हुए पुराने जहाज-जैसा यह हम लोगों का मिशन कम्पाउण्ड और छोटा-सा

चर्च, इसका जिक्र करना गलत तो नहीं होगा ? अपनी नैतिक बदहवासी के बीच भी अपने आस-पास को साफ रखना···। उसे आँखों में समेटना और जीभ की नोक तक ले आना···। ओह, संतपिता यह वास्तव में कितनी विचित्र बात है कि अगर मिस्टर जोजफ किसी क्रुद्ध रोमन सांड की तरह सींग ताने हुए आये और इस बांस की खपच्चियों से बनाये गये 'घर' की छत को उछालकर, दूर फेंक दें । पहाड़ियों के उस पार जहां गुटांगों लोगों का कुल देवता 'मुभूसांगो' का वास है । मैं एकबारगी अपने-आपको नंगी कर दी गई-सी महसूस करूँगी और चीख उठूंगी । यह क्या अजीब-सा वक्त मुझ पर आ गया है । मैं अक्सर कबीले के धनुषधारी लोगों के बीच घिरे । हुए होने का सपना देखती हूँ और गुटांगों अपने मुँह से 'हू-हू' की विचित्र-सी आवाजें निकालता हुआ मुझे सावधान करता है कि मैं कपड़े नहीं पहने हुए हूँ । अभी थकावट और परास्तता में सो जाने से पहले अपनी अंगुलियों से विचित्र-विचित्र संकेत करते हुए गुटांगों समझाने की कोशिश कर रहा था ।

देवी ! कबीले की देवी ! मगर मिस्टर जोजफ की जहरबाद नजर मुझे एक सिर्फ 'प्रेगनेन्ट वूमन' की अनैतिकता की आँधी में छोड़ गई है । किसी भी जाति या किसी भी सम्प्रदाय या किसी भी धर्म में औरत का औरत होना, सचमुच कितना विचित्र है ? और यह विचित्रता जब बदहवासी में बदल जाती है···?

इस इलाके के आदिवासी बच्चों को पढ़ाने और उनमें धर्म-प्रचार करने के लिये जब आप दिल्ली से यहां मुझे साथ ले आये थे । आपने बताया था कि यह इलाका अद्भुत है । दूर-दूर तक फैली हुई इसकी अरण्यता, बेशुमार जंगल और पशु-पक्षी, और सभ्यता की लपेट में आते हुए कबीलों के लोग कितने अच्छे हैं ।

कल रात इतना सन्नाटा रहा । झरे हुए पत्ते जब पिछवाड़े खड़खड़ा रहे थे, हवा, शायद, उतनी नहीं थी । मुझे सांपों के तेजी से रेंगने की आवाजें ज्यादा लग रही थीं ।

जिस दिन का जिक्र मैं आपसे करना चाहती थी । उन दिनों मैं 'विश्व के महान् प्रेमी' नामक दिलचस्प पुस्तक पढ़ रही थी और मुझे इस बात पर हँसी आ रही थी, कि पुरुषों की सारी बुद्धिमत्ता स्त्री के शरीर के आगे कैसे लाचारगी में मिल जाती है ? पत्तों का पांवों का नीचे आकर खड़खड़ाना मुझे हमेशा अच्छा लगता रहा है । लगता है, प्रकृति ने यह चाहा है कि हम चलें और अपने चलने को सुनें ।

आप विश्वास करें, सन्तपिता, अगर गुटांगों चीते की तरह उछल कर

मुझ तक न आ गया होता, तो सांप, शायद मुझे डँस चुका होता ? वियेना जाने से पहले उसे वक्त-बेवक्त मेरी देख-भाल करते रहने को आप कह गये थे, बहरहाल, उसने सांप को अपने पांव के अँगूठे से गिल्ली की तरह हवा में उछाल दिया और मैं बदहवासी में फिसलकर औंधी हो चुकी थी। उसने सँभाला और बिठाया।

संतपिता, यह बदहवासी-जैसा शब्द अच्छी-खासी उम्र में आने के बावजूद मुझसे सधता क्यों नहीं है ? मैं स्कर्ट और ब्लाउज पहने हुए चहल-कदमी करती हुई, थोड़ा जंगल तक आई थी। मैंने गुटांगों की आंखों में एक चमक देखने के बाद यह याद किया कि बदहवासी में 'अण्डरवेयर' का न पहने हुए होना हो सकता है।

मेरे समझदार, धर्मनिष्ठ और साहित्य-प्रेमी होने की बातें आप भी करते रहे हैं। तो क्या ऐसा ही होता होगा ? जैसे एक अच्छी-खासी बुद्धिमान औरत निहायत अपढ़ और वन्य आदिवासी के स्पर्शों से हो सकती है ? बुद्धिमत्ता के बावजूद पुरुष भी होते होंगे। मैंने निर्णय लिया था कि पहल मुझे ही करनी होगी। आपके जूते-मोजे खोलते हुए प्रार्थना-मुद्राओं में झुका हुआ उसका सिर मुझे भूला नहीं था। नहीं वह अपनी भीरुता में से नहीं आ सकता था। वन्यता अपने ताकतवर होने के बावजूद कभी-कभी कितनी कोमल होती है ? उसने पहली-पहली बार मुझे बिना वस्त्रों के देखा था—बस, बच्चों की तरह किलकारियाँ मारता हुआ भाग नहीं खड़ा हुआ। अद्भुत हँसी में वह कितना अलौकिक लग रहा था ? अपने शरीर का किसी अलौकिक-सी नियामत के रूप में देखा जाना और कृतकृत्यता की-सी मुद्रा में देखते हुए की नजरों का थरथराहट महसूस करना कितना अजीब है।

मिस्टर जोजफ कह गये हैं कि मैं गिर चुकी हूँ। मानना होगा कि यह लड़ाई मुझे आखिर लड़नी ही पड़ती। मैं वहीं पर से याद करना चाहती हूँ। हो सकता है, दिखने में उस तरह की चीजों या घटनाओं का कोई महत्व न हो। किसानों से लेकर कबीलों तक में फैली हुई उन वास्तविकताओं की, जो समय में सूखकर कहानियाँ बन जाती हैं और उनमें वक्त-जरूरत पर आप्तवचनता या उदाहरणता को जल की तरह छींटिये, वो ताजा हो आती है। अपने भीतर की लड़ाई में उन सबको शामिल करना होगा।

आप इस वक्त विदेश में शायद संत पीटर्स के विश्व प्रसिद्ध प्रार्थना-गृह में हैं, क्योंकि शाम हो चुकी है और आप चौंक रहे हैं ? लेकिन क्या इस वास्तविकता से आप इन्कार कर पायेंगे, जो समय में सूखकर कहानी और आप्त

वचनता में आकर हकीकत बन जाती हैं ?

मैंने उस दिन गुटांगों को डाटा था। ढेर सारी, दुर्लभ किस्म की क्राकरी उसने अपनी बेवकूफी में बेकार कर डाली थी। मैं जानती थी, आपकी दया-मयता और क्षम्यता आपके क्लेश को कठोर शब्दों में नहीं फूटने देगी। शायद, इसीलिये। अब लगता तो है कि उस दिन कुछ ज्यादा क्रुद्धता से काम ले लिया था। आप कितने शांत स्वर में मुझे समझा रहे थे कि 'मेरी प्यारी बच्ची, उसने क्रुद्धता को जीता था ! हम यहाँ हैं कि उस तक, उसकी अक्रुद्धता और करुणा तक दूसरों को भी ले जायें। देखो, एक बात याद रखना। हिंदुस्तान में जो तुम करोड़ों अहिंदुओं को देखती हो, यह सब हिंदुओं के इसी दर्प की उपज है। दूसरों को अपने से छोटा मानकर, चुपचाप अपने बड़प्पन में जीना—दूसरों को छोटा कहकर, उनके छोटेपन को कोंच-कोंचकर अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करना। हम यहाँ इसलिये नहीं हैं। हमें पीड़ितों, उपेक्षितों और दरिद्रों को बराबरी का दर्जा देकर, अपने साथ लेना है, तभी हमारा बड़ा होकर चलना ज्यादा आसान और सम्भव होगा। इन सम्पत्ति-'विहीनों को सिर्फ बराबरी का अहसास दे देना ही, उपकृतता से भर देना है। इन्हें अपनी निकटता दो। इनके छोटेपन पर से तुम्हारा कद और ज्यादा बड़ा दिखेगा।'

मैं आज कह रही हूँ कि इस सारी आप्तवचनमयता के बावजूद क्राकरी के नष्ट हो जाने का क्लेश आपको मुझसे ज्यादा ही होता रहा था। इसलिये आप मेरी यातना को बर्दाश्त करेंगे ? आपने खुद बर्दाश्त की है। 'भुभूसांगों' कबीले की 'नंगी देवी' की वास्तविकतायें समय में सूख कर 'कोकटेल' बन चुकी हैं न ?'

अब संतपिता ! अब मैं अपने इस सुख पर आती हूँ, जिसे दुर्दान्त यंत्रणाओं में बदल जाने से 'भुभूसांगों' कबीले की नंगी देवी नहीं, सिर्फ आप बता सकते हैं। हालाँकि सिर्फ तभी। सिर्फ बर्दाश्त कर लेने की हद से आगे तक था…भी मैं……। शायद, इसीलिये मुझे भी प्रतीक्षा है कि संतपिता, आप कब तक वापस लौटेंगे ?

मिस्टर जोजफ क्या सुख महसूस करते रहे हैं ? मैं कहाँ जाती हूँ, क्या करती हूँ, मेरे भीतर क्या छिपा रहता है—लगातार इन तफसीलों में रहना, सम्भव तो नहीं है।

खैर मुझे अब इस अंत में मिस्टर जोजफ से बचना चाहिये। और यह उनके प्रति घृणार्तता में से मुक्त हुए बिना कैसे सम्भव है।

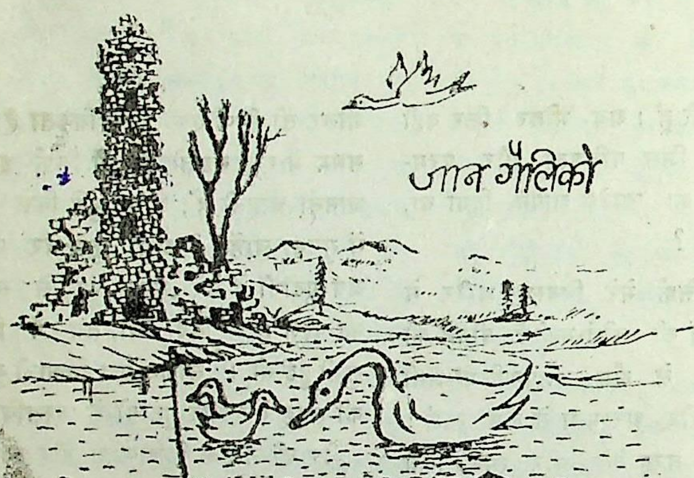
संतपिता, अपनी घृणा से आहत और विक्षुब्ध आँखों को दूसरों की तरफ

से हटा लेती हूँ। अब भीतर फिर वही सुख है। जिस पवित्रता और परम-पितामयता का उपदेश आपने दिया था, वह कहाँ है ?

क्यों सिर्फ मेरे विवस्त्र शरीर में वही गुटांगों की कीड़े-मकोड़े बीनने की उत्फुल्लता से लैस छिपकलियाँ-जैसी आँखें हैं और अरण्यता से लैस स्पर्श ! ओह, इसी तरह देखे और स्पर्श किये जाने में कितने महीने बीत चुके हैं ? अब मैं क्यों कैलेण्डर में छपी तारीखों में से अपने-आपको गिन नहीं पाती हूँ और क्यों जो सुख मुझे महसूस होता आया है, होता है, होगा। मुझे अपने भीतर गिरते हुए होने की जगह, अपने औरतपन में ऊपर उठते जाने की-सी प्रतीतियाँ क्यों होने लगी हैं ? मैं जानना चाहती हूँ। सुख, जो मेरे भीतर उगता रहा है उगता है, उगेगा। यह घृणार्तता मिस्टर जोजफ में से क्यों आ रही है ? मेरे भीतर तो सिर्फ एक वास्तविकता है, जो समय में सूख सकती है, मैं सिर्फ इतना जानना चाहती हूँ, आप मुझे किस रूप में सुनना चाहेंगे ? अभी कुछ देर पहले जब गुटांगों ने मेरे उदर पर से साड़ी का पल्लू हटा दिया था, तब मैं सिर्फ सुखी हुई थी।...लेकिन एक शिकारी कुत्ते की तरह मेरे और गुटांगों के वस्त्रविहीन शरीर की गंध से विक्षिप्तता और आत्म-हंतता की हद तक उत्तेजित होकर निकल जाने वाले मिस्टर जोजफ के बाद मेरे लिये सिर्फ यह बदहवासी क्यों छूट गई है ? निर्णय तो मैं ले चुकी हूँ, मगर फिर भी प्रतीक्षा में हूँ। सिर्फ प्रतीक्षा करने की जगह, एक निहायत आत्म-सन्नद्ध निर्णय से लैस प्रतीक्षा...किन्तु कब तक ?

सचमुच, वियेना से, संतपिता—आप कब तक वापस लौटेंगे।

अंग्रेजी कहानी

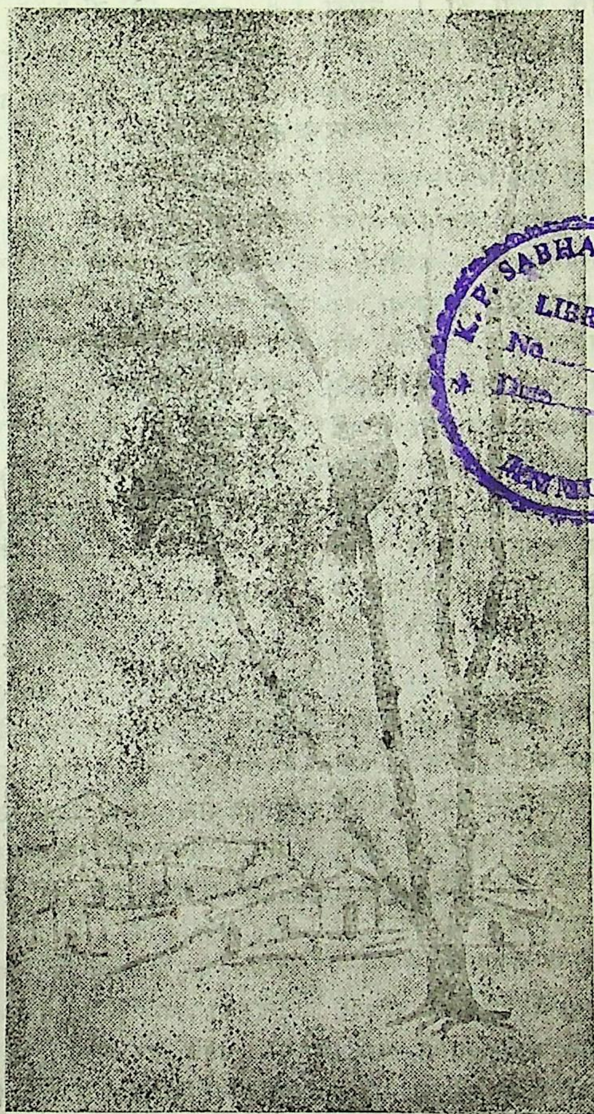


बर्फ-हंसिनी

वह बड़ा दलदल-प्रदेश चेम्बरली ग्राम और प्राचीन सैक्सन के मछुवारों के छोटे गाँव 'विकेलडूथ' के बीच एसेक्स समुद्र-तट पर स्थित है। यह इंगलैंड के उन सीमावर्ती जंगली स्थानों में से एक है, जो क्षुब्ध सागर के समीप जाने वाले दूर-दूर तक ढलुआ हरी घासों और नरकुलों में फैले हुये नमक-भूमि में जाकर समाप्त हो जाते हैं।

समीप ही एल्डर नदी की एक सर्पिल बांह पुराने समुद्र के किनारे स्थिर और ठोस अनवरत एवं अनाधिकार रूप से समुद्र के पानी के खिलाफ प्रवेश करती हुई बढ़ती है —

नीचे जल पर नष्ट हुये प्रकाश-स्तम्भ के टूटे-फूटे काले पत्थर, सतह के धसान से बचने के लिये बनाये गये टीलों के सिर जैसे लगते हैं। पहले यह



[स्तम्भ एसेक्स कोष्ट पर प्रकाश-स्तम्भ जल और थल बदला और इसका उपयोग का कार्य करता था। समय के साथ समाप्त हो गया।

बाद में इसने एक बार मानव निवास-स्थान का कार्य किया। इसमें एक अकेला व्यक्ति रहता था। उसका शरीर कुरूप था लेकिन हृदय जंगली जीवों के लिये प्यार से परिपूर्ण। वह देखने में भद्दा था, लेकिन विशालतर सौन्दर्य का जनक बना।

शारीरिक कुरूपता मनुष्य के अन्दर व्यक्ति के प्रति घृणा पैदा करती है। लेकिन रेडार घृणा नहीं करता था, वह जानवरों, व्यक्तियों एवं प्रकृति को अत्यन्त प्यार करता था। उसने अपनी विकलांगता से उत्पन्न कठिनाइयों पर विजय पा ली थी, लेकिन अपनी कुरूपता के कारण उसे जो अपमान सहना पड़ता था, उसको वह सहन नहीं कर पाता था। दूसरों से सद्भावना न पाने के कारण ही वह एकांतवास करने आया था।

जब वह दलदल-प्रदेश में आया, सत्ताइस वर्ष का था। एकान्त में रहने का निर्णय लेने के पहले उसने दूर तक सोचा था और अपने अंतर्मन से संघर्ष किया था कि वह अपने को दुनिया से अलग कर लेगा जिसमें वह मनुष्य की तरह भाग नहीं ले सकता।

अपनी यात्रा में वह अपने पक्षियों, चित्रों और नौका को ले आया था। अपने भद्दे हाथों से उसने सारा प्रबन्ध स्वयं अच्छी तरह से कर लिया था और अक्सर तेज वायु में तरंगित होते अपनी नौका की पाल सम्हालने के लिये मजबूत दाँतों को प्रयोग करता था।

उसके बाड़े में हंस थे, जो प्रत्येक अक्टूबर में आइसलैण्ड और स्विसवर्जन तटों से आते थे—भूरे शरीर वाले गुलाबी पंजे वाले, सफेद सीने वाले ध्रुवप्रदेशीय हंस जिनकी गर्दन काली और मुख पर आवरण तथा सामने सफेद सीने पर काली धारियाँ होती थीं। कुछ के पंख कटे हुये थे जिससे वे जंगली पक्षियों के लिये, जो प्रत्येक सर्दी के आरम्भ में आते थे, इस बात के संकेत जैसे थे कि यहाँ उनके लिए भोजन और आश्रम है।

रेडार का मन अवकाश के दिनों में उस प्रदेश में बसे प्राणियों के चित्र बनाने में रम जाता था। इसके अतिरिक्त उसका वर्त्तमान कुछ भी नहीं अतिरिक्त था।

इस स्थान पर आने के तीन साल बाद एक नवम्बर की शाम को समुद्री दीवार की सहारे एक छोटी-सी बालिका रेडार के स्टूडियो में आयी। उसके हाथों में एक बोझ था। उसकी उम्र बारह साल से अधिक नहीं थी, वह क्षीण और मलिन बालिका डरी हुई चिड़िया की तरह घबराई थी। लेकिन आँखों की काजल के नीचे वह अलौकिक रूप से सुन्दर थी। वह विशुद्ध सैक्सन बालिका थी। उसके सर की लिहाज से, शरीर को और विकसित होना चाहिये था। आँखें बैंगनी रंग की गहराई महसूसती-सी थी।

वह जिस कुरूप व्यक्ति के पास आयी थी, उससे बुरी तरह भयभीत थी क्योंकि रेडार के आस-पास पहले से ही कहानियाँ इकट्ठी होनी आरम्भ हो गयीं थीं और वहाँ के उन जंगली शिकारियों की घृणा का पात्र बन चुका था जिनके शिकार करने में वह बाधक था। लेकिन बालिका के मन में उसके डर से भी बड़ा उसकी वह आवश्यकता थी जिसको लेकर वह यहाँ आयी थी। उसके शिशु-मन में बन्द वह बात थी जो दलदल प्रदेश में सुनी गई यह कहनी थी कि प्रकाश-स्तम्भ में रहने वाला व्यक्ति जादू के जोर से घायलों को स्वस्थ कर देता है।

इससे पहले उसने रेडार को कभी नहीं देखा था—काले दाढ़ी से भरा चेहरा, मनहूस कूबड़ और मुड़ी हुई हथेली। उस प्रेत-तुल्य को देखकर वह स्टूडियो के दरवाजे से ही अपने पीछे खींचे गये कदमों पर भागने वाली थी। लेकिन उसकी आवाज मृदु और गंभीर थी। वह बालिका से बोला—

'यह क्या है ? बच्चे !'

वह डगमगाते कदमों से आगे बढ़ कर खड़ी हो गयी। जिस चीज को वह अपनी गोद में लायी थी एक सफेद बड़ी चिड़िया थी—बिल्कुल शांत। चिड़िया की सफेदीपन पर और बालिका के कपडे पर खून के धब्बे पड़े थे। लड़की ने इसको अपनी हाथों पर ले लिया। 'मैंने इसको पाया है, महाशय। यह घायल है। क्या यह अब भी जीवित है ?'

'हाँ ! हाँ ! मैं ऐसा ही समझता हूँ। अन्दर आ जाओ बच्चे ! अन्दर आ जाओ।'

रेडार भीतर गया और परी को मेज पर रख दिया—जहां वह हल्के से हिला। उत्सुकता ने भय पर विजय पा ली। लड़की उसके पीछे-पीछे गयी।

कमरा कोयले से गर्म था जिसकी दीवारें कई रंगीन चित्रों से ढकी थी और एक अपरिचित लेकिन खुशगवार सुगन्ध से भरा था।

पक्षी फड़फड़ाया। रेडार ने अपने दक्ष हाथों से इसके एक सफेद पंख को फैलाया। इन पंखों के किनारे पर बहुत सुन्दर छींटे पड़े थे। रेडार ने उसकी ओर हर्षित होकर देखा और कहा—'बच्चे ! इसको तुमने कहां पाया ?'

'दलदल में महाशय, जहां बहेलिये थे। क्या ! यह क्या है ?'

यह कनाडा की एक बर्फ-हंसिनी है। लेकिन यहाँ यह कैसे आयी ?

ऐसा लगा बालिका को नाम समझ में नहीं आया। उसकी गहरी बैंगनी आंखें, मैले चेहरे से अलग, चिन्तातुर घायल पक्षी पर टिकी थी।

उसने पूछा—'क्या हम इसे स्वस्थ कर सकते हैं ?'

'हां ! हां' रेडार ने कहा ।

उसकी आलमारी पर कैंची, पट्टियां और मलहम थी और वह अति दक्ष था । अपनी कलाई के टेढ़ी होते हुये भी उसने सब कुछ अच्छी तरह से किया ।

उसने कहा—'आह यह बन्दूक से मारी गई है, बड़े दुख की बात है । इसकी टांग टूट गई है और डैना झुक गया है, लेकिन गंभीर रूप से नहीं । देखो ! हम लोग इसके पंख को तराश देंगे, जिससे पट्टी बांध सकें । बसन्त में इसके डैने निकल आयेंगे और वह फिर उड़ने लायक हो जायेगी ।'

बालिका का डर कम हो गया । जब तक वह काम करता रहा, लड़की उसको उत्सुकता से देखती रही । पक्षी के पांवों को सहारा बांधते हुये उसने बालिका को सबसे कौतूहलपूर्ण कहानी सुनाई ।

चिड़िया छोटी थी—एक साल से अधिक की नहीं । वह समुद्र—पार दूर इंगलैण्ड के एक देश में पैदा हुई थी । बर्फ और अत्यधिक ठंड से बचने के लिये जब दक्षिण की ओर उड़ी, एक प्रचंड तूफान में यह रास्ते में ही फंस गई । सचमुच यह बड़ा तूफान था, इसके डैनों से भी बड़ा । कई दिन और रात तक तूफान ने इसको अपनी पकड़ में रखा और अन्त में जब यह उड़कर बाहर आई और इसके मजबूत इरादे दक्षिण ले आये तब वह एक भिन्न जमीन पर अजनबी पक्षियों के बीच थी । अन्त में अपनी कड़ी यातनाओं से थक कर अपने एक परिचित हरे मैदान में आराम के लिये ठहर गई—केवल एक शिकारी के बन्दूक का निशाना बन गयी ।

अन्त में रेडार ने कहा—'हम लोग इसको 'ला प्रिंसेज परड्यू'—भटकी राजकुमारी कहा करेंगे । और उसने अपनी जेब से मुट्ठी भर अनाज निकाल कर मेज पर बिखेर दिया ।

हंसिनी ने अपनी गोल-पीली आंखों को खोलकर देखा और दाने चुगने लगी । बालिका प्रसन्नता से हँस पड़ी और तब अचानक उसने एक सांस ली और बिना कुछ बोले घूमकर दरवाजे से बाहर भागी ।

ठहरो ! ठहरो ! रेडार चिल्लाया । बालिका समुद्री दीवार पर भाग रही थी लेकिन उसकी आवाज पर ठहर कर पीछे की ओर देखने लगी—

'तुम्हारा नाम क्या है बच्चे ?'

'फ्रिथ ।'

'ओह' ! रेडार ने कहा, तुम कहां रहती हो ।'

विकेल्ड्राथ में मछुवारों के साथ । उसने प्राचीन सैक्सन उच्चारण में नाम बताया ।

क्या तुम कल या इसके बाद आने वाले दिन यह देखने आओगी कि प्रिसेज कैसी है।

उसकी पतली आवाज आई, 'हाँ" और तब वह अपने सुन्दर बालों को पीछे लहराती हुई जा चुकी थी।

हंसिनी शीघ्रता से स्वास्थ्य लाभ करने लगी और सर्दियों के बीच तक गुलाबी पंजेवाले हंसो से हिल-मिल गयी। वह चलने लगी थी और रेडार की आवाज पर आना सीख चुकी थी। और बालिका फ्रिथा नियमित दर्शक बन चुकी थी।

तब जून की एक प्रातः को गुलाबी पंजे वाले पक्षी प्रकाश-स्तम्भ की जमीन से आकाश में बड़े-से-बड़े परिधि में उड़ते अपने निवास-स्थान की ओर चल पड़े। उनके साथ सफेद पंखे पर काली धारी-वाली हंसिनी भी थी। फ्रिथा प्रकाश-स्तम्भ पर ही थी। उसके चिल्लाने पर रेडार अपने स्टूडियो में से दौड़ते हुये बाहर आया।

'देखो! देखो! क्या राजकुमारी जा रही है।'

रेडार ने आसमान में ऊपर चढ़ते पक्षी-समूह को ध्यान से देखा। 'हां' वह अचेतन में उसको अपनी आवाज की ओर लाते बोला।

वर्फ-हंसिनी के चले जाने के साथ ही फ्रिथा का प्रकाश स्तम्भ पर आना बन्द हो गया।

रेडार ने अब फिर 'एकान्त' शब्द का अर्थ जाना।

उस गर्मी में, अपनी स्मृति के आधार पर उसने एक क्षीण काजलयुक्त आँखों वाली लड़की का चित्र बनाया, जिसके बाल हवा के झोंके के साथ उड़ रहे थे और जिसके हाथ में एक घायल पक्षी था।

नवम्बर के मध्य में चमत्कार हुआ। समुद्र एवं हवाओं के शोर से ऊंचा उसने स्पष्ट रूप से पक्षी समूह के उड़ने के शोर को सुनकर सर उठाया। तब एक सफेद काले पंख वाला पक्षी प्रकाश-स्तम्भ के ऊपर चक्कर काटता बाड़े में उतरा। वह इस तरह से आगे बढ़ी जैसे वह कभी बाहर न रही हो। यह बर्फ-हंसिनी थी। रेडार की आँखों में प्रसन्नतावश आंसू आ गये।

जब रेडार खाद्य-सामग्री लेने चेम्ब-रली ग्राम गया तो उसने मिस्ट्रेस के पास एक संदेश छोड़ दिया, 'फ्रिथा, जो 'विकेल्ड्राथ' में मछुआरों के साथ रहती है, को बताइये कि खोई हुयी राजकुमारी लौट आयी है।'

तीन दिनों के बाद फ्रिथा—कुछ अधिक लम्बी, अब भी असज्जित—लजाते हुये प्रकाश-स्तम्भ में खोयी हुई राज-कुमारी को देखने आयी। समय बीतता गया। वे एक प्राकृतिक लय में पड़ गये थे तब भी जब बालिका बड़ी हो गयी। जब हंसिनी प्रकाश-स्तम्भ पर थी, फ्रिथा उसको देखने और रेडार

से बहुत सीबातें सुनने को आती। वे एकसाथ तेज गतिवाली नौका, जिसको वह बहुत चतुराई से चलाता था, में घूमते थे। वह उसके लिये कभी-कभी खाना बनाती थी और यहाँ तक कि उसके रंगों का मिश्रण भी करती।

लेकिन हंसिनी जब अपने ग्रीष्म-नीड़ में लौट गई, फ्रिथा ने आना बन्द कर दिया। एक साल हंसिनी नहीं लौटी। रेडार का दिल टूट गया। उसके लिये सभी चीजें मृतप्राय हो गई। उसने भीषण रूप से भरी गरमी और जाड़े तक चित्र बनाये। इसके बीच उसने बालिका को एक बार भी नहीं देखा। लेकिन ग्रीष्म के अवसान में परिचित कंठ आकाश से फिर सुनाई पड़ा और बड़ी सफेद पक्षी—अब पूरी विकसित अवस्था में उसी ढंग से उतरी, जिस रहस्यमय ढंग से वह उड़ गयी थी। प्रसन्नतापूर्वक रेडार अपनी नौका से चेम्बरली गया और अपना संदेश मिस्ट्रेस के पास छोड़ दिया।

संदेश छोड़ने के एक महीने बाद की यह बात है, जब फ्रिथा दोबारा दिखलाई पड़ी और रेडार ने झटके से इस बात को महसूस किया कि अब वह बालिका नहीं थी।

उन्नीस सौ चालीस के बसन्त में पक्षी दलदल-प्रदेश से कुछ पहले ही प्रवास कर गये थे। संसार युद्ध पर था। बमवर्षकों की विस्फोट एवं गर्जना ने उनको भयभीत कर दिया। मई के प्रथम दिवस पर रेडार और फ्रिथा ने कंधे से कंधा सटाकर समुद्र के किनारे खड़े होकर अपने बाड़े में बचे आखिरी हंसों एवं चीलों को प्रवास करते देखा। लड़की लम्बी, सुकुमार, हवा की तरह उन्मुक्त और सुन्दर, वह काला, कुरूप, बढ़ी हुयी दाढ़ी वाला आसमान की ओर उठा सर।

वह देखो फिलिप! फ्रिथा ने कहा।

हंसिनी उड़ चुकी थी, उसके विशाल डैने खुल गये थे, लेकिन वह नीचे ही उड़ रही थी। एक बार तो वह उनके एकदम समीप आ गई। उन्होंने पक्षियों के तेजी से गुजरने की सरसराहट सुनी। एक बार वह दोबारा प्रकाश-स्तम्भ पर चक्कर काटकर जमीन पर उतर आई और बाड़े में पालतू हंसों के साथ दाना चुगने लगी।

'देखो अब वह नहीं जा रही है'—फ्रिथा ने उत्फुल्ल होकर कहा। पक्षी ने उड़ान भर के उसके चारों ओर एक प्रकार का जादू-सा भर दिया।

'हाँ!' उसने कहा, लेकिन उसकी आवाज काँप गई। वह यहीं रहेगी। अब वह फिर नहीं जायेगी। खोयी राजकुमारी अब खोयी नहीं रह गयी। अब यह उसका घर है—उसके अपनी स्वतंत्र इच्छाओं की। फ्रिथा रेडार की आँखों में गहराई तक पैठ चुकी एकांतता

और सूनापन से डर गई। उसकी शांति और उनके बीच अनबोले बातों की चुप्पी ने उसके भय को और बढ़ा दिया। उसके स्त्रीत्व ने उसको इस बात से आगाह कर दिया कि उसको कुछ उन चीजों से बचना चाहिये जिसको वह समझने योग्य नहीं थी।

फ्रिथा ने कहा—'मुझे जाना चाहिये। विदा! मैं प्रसन्न हूँ। राजकुमारी तुम्हारे पास रहेगी। अब तुम इतने एकाकी नहीं रहोगे।' वह घूमकर तेजी से भागने लगी।

'विदा फ्रिथा।' प्रेत-मुख से निकली आवाज घासों के मर्दन की आवाज में अनसुनी ही रही।

कुछ खो देने की एक तीव्र अनुभूति ने फ्रिथा को मुड़कर पीछे देखने को बाध्य कर दिया। रेडार अब भी समुद्री दीवार पर खड़ा था और आसमान के ऊपर एक काला धब्बा ···

फ्रिथा फिर तीन हफ्ते से कुछ अधिक दिन गुजर जाने पर प्रकाश-स्तम्भ पर आयी। मई समाप्ति पर था और सुनहरी गोधूलि बेला आकाश को राह दे रही थी। उसने स्वयं अपने से कहा कि उसको अवश्य जानना चाहिये, क्या वह हंसिनी सचमुच रेडार के पास ठहरी या नहीं।

फ्रिथा ने रेडार को लालटेन के धीमी प्रकाश के बगल में देखा। उसकी नाव हलचल करती लहरों पर तैर रही थी और वह उसमें खाद्य सामग्री लाद रहा था— पानी, खाना, ब्रांडी की बोतलें और एक अतिरिक्त नाव। बालिका ने देखा, वह पीला पड़ गया था लेकिन उसकी काली आँखे जो सामान्यत: दयालु और स्पष्ट रहती थीं, स्फूर्ति से चमक रही थीं और वह श्रम के कारण जोर-जोर से हाँफ रहा था।

अचानक फ्रिथा को आशंका ने घेर लिया। वह हंसिनी को भूल गई। फिलिप! क्या तुम जा रहे हो? रेडार ने अपने कार्य को थोड़ी देर के लिये रोक दिया। उसके चेहरे पर एक नई चमक थी।

'फ्रिथा! मैं खुश हूँ, तुम आ गयी। हाँ! मुझको जाना है। एक छोटी यात्रा है। मैं वापस आऊँगा। उसकी हमेशा की मृदु वाणी उसके अन्दर मची हुयी हलचल के कारण रूक्ष हो गयी थी।

फ्रिथा ने पूछा, 'तुम्हें कहाँ जाना है?'

अब काँपती आवाज रेडार की ओर से आयी। उसको डनकर्क जाना है। समुद्र के १०० मील पार एक ब्रिटिश सैनिक दस्ता वहाँ आगे बढ़ते जर्मनों के हाथों अपने विनाश की प्रतीक्षा में टापू पर फँस गई है। टापू पर आग लगी है। स्थिति निराशाजनक है। सरकार के अनुरोध पर चेम्बरलीवासी अपनी प्रत्येक

नौकाओं को जो उन लोगों को जर्मनों के हाथों से निकाल लाने में समर्थ हैं, समुद्र पार भेज रहे हैं।

फ्रिथा ने सुना और महसूस किया कि भीतर उसका हृदय बैठा जा रहा है। वह कह रहा था कि अपनी नन्हीं-सी नौका में समुद्र पार जायेगा। एक समय में छः आदमियों को ला सकता है और थोड़ी परेशानी में सात को।

अबोध लड़की बोल सकने में असमर्थ थी। वह युद्ध को नहीं समझती थी, या जो कुछ हुआ था, या फँसी हुई सेना का अर्थ, लेकिन उसके भीतर का खून उससे कह रहा था कि खतरा है।

फिलिप ! मुझे भी अवश्य चलना चाहिये। तुम वापस नहीं आओगे ?

रेडार की उत्तेजना समाप्त हो गयी थी और उसने लड़की को ऐसे शब्दों में समझाना आरम्भ किया जिससे वह समझ जाय। उसने कहा--लोग शिकार किये गये पक्षी की भाँति टापू में फंस गये हैं। क्रिया उन्हीं घायल और शिकार किये गये पक्षियों की तरह जिनको हम पाते थे तो अपने बाड़ों में लाते थे। उनके ऊपर चील और दूसरे विशाल पक्षी उड़ते रहते हैं जिनसे बचने के लिये उनके पास कोई स्थान नहीं है। वे खोये हुये तूफानग्रस्त लोग हैं। जैसे तुम उन्हें बर्फ-हंसिनी को कई साल पहले दलदल में पाने पर मेरे पास लाई थी और हमने उसका उपचार किया। उनको मदद चाहिये फ्रिथा, वे मदद चाहते हैं। यही कुछ मैं कर सकता हूँ। एक बार के लिये मैं आदमी बनकर अपनी भूमिका निभा सकता हूँ।

पहली बार फ्रिथा को अनुभव हुआ कि वह कुरूप, मद्दा नहीं था। कुछ विचार उसके अन्दर उथल-पुथल मचाये थे जिनको वह चिल्ला-चिल्लाकर कहना चाहती थी लेकिन वह नहीं जानती थी, उनको कैसे कहे।

'मैं तुम्हारे साथ चलूंगा फिलिप !'

रेडार ने अपना सिर हिलाया। नाव में तुम्हारे होने से एक सैनिक को पीछे छोड़ना पड़ जायेगा। मुझे अकेले ही जाना चाहिये।

उसने रबर का कोट और बूट पहना और अपनी नाव पर सवार हो गया। उसने हाथ हिलाया और कहा, 'विदा' 'क्या तुम मेरे पक्षियों की जब तक मैं न लौटूं देख-भाल करोगी फ्रिथा।'

फ्रिथा का हाथ ऊंचा उठा लेकिन केवल आधा। 'मैं तुम्हारे पक्षियों की देख-भाल करूँगी, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें फिलिप।'

अब रात्रि थी। फ्रिथा समुद्री दीवार पर खड़ी धीरे-धीरे समुद्री मुहाने की ओर खोती हुयी नौका को देखती रही। अचानक अँधेरे में उसके पीछे डैनों के हवा में उड़ने से उत्पन्न सरसराहट की आवाज के साथ कोई चीज में हवा उ

गई। उसने रात्रि के अँधेरे में सफेद डैनों पर काली धारी वाली हंसिनी की तनी हुई सिर को देखा।

वह उठी और प्रकाश-स्तम्भ के ऊपर एक चक्कर काटकर उड़ चली, जहाँ रेडार की नौका तिरछी होकर हवा के सहारे बढ़ रही थी।

सफेद नौका और सफेद हंसिनी देर तक दिखाई देते रहे।

इसके बाद कहानी टुकड़ों में बँट जाती है और इनमें का एक टुकड़ा अवकाश पर आये हुये एक व्यक्ति ने ईस्ट चैंपेल के एक शराबखाने में स्थित क्राउन एवं एरो के पब्लिक हॉल में सुनाया।

'गार्न!' विकलांग पैरों वाले आर्टिलरी मैन ने कहा—

यह एक हंसिनी थी। मेरी ही तरह औरों ने भी देखा। यह हम लोगों के सर के ऊपर डनकर्क में आग से उठते धुएँ और दुर्गन्ध के बीच से आई। यह सफेद थी, पंखों के ऊपर काले धब्बे थे। हम लोगों के उपर यह बमवर्षक जहाज की तरह चक्कर काटती रही थी। हम लोग थके थे। जोक लोग कहते हैं यह मृत्यु-संदेश का दूत है। हम लोग डनकर्क और ला-पेनी के बीच विक्टोरिया एम्बार्कमेन्ट पर पुष्ट कबूतरों की तरह जर्मनों का निशाना बनने की प्रतीक्षा में विश्राम कर रहे थे। वे हम लोगों के पीछे गोले बरसा रहे थे।

समुद्र तट से कुछ दूर केन्टिश मेड है। एक तुच्छ, चपटी नौका ने ग्रीष्म मारगेट के बाहर कई चक्कर लगा लिए थे। दो और छः में हम लोग छिछले तल से बाहर ले जाने के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे।

जब हम लोग रेत पर थके पड़े हुये भाग्य को कोस रहे थे, क्योंकि नौका तक जाने का कोई रास्ता नहीं था, एक स्टूका उसके ऊपर डुबकी लगाकर आया और एक बम उसकी बगल में गिर गया। डूबने के पहले वह जलने लगी, धुआँ और दुर्गन्ध हवा के साथ तट की ओर आने लगी थी। सब पीला और काला हो गया था। और इसके बीच से हम लोगों के पास से चक्कर लगाती हंसिनी आई थी।

और तब विपरीत दिशा से एक बहुत छोटी नौका पर वह तैरता हुआ, बहुत धीमी गति से आया था, जैसे कोई रईस व्यक्ति रवीवार के अपराह्न में 'एनली' पर आनन्द के लिये निकला हो।

कौन आ रहा है? एक ने पूछा था।

मैं हूँ! मैं हूँ! उसने हम लोगों को परेशानी से बचाया। वह एक जर्मन नौका से चलाये गये मशीनगन की गोलियों से बचकर तैरता आया था। एक छोटा, काले दाढ़ी वाला आदमी, मनहूस पंजे वाला पीठ पर एक

कूबड़। पतवार के सिरे पर खड़े होकर टेढ़े पंजे से आने का इशारा किया था और सर के ऊपर चारों ओर हंसिनी चक्कर लगाती रही थी।

जोक ने कहा था, 'लाक ! अब यहाँ सब समाप्त है। यह शैतान स्वयं हम लोगों के पास आया है। यह अवश्य ही चोट खा गया होगा लेकिन जानता नहीं होगा।'

'गार्न ! मैं कहता हूँ यह शैतान की अपेक्षा मुझे भगवान की तरह देखता है। वह एक समय पर केवल सात लोगों को लेता है। जब नजदीक आता है तो गाता होता है।'

हमारा आफीसर चिल्लाया था, भले आदमी ! सबसे नजदीक के सात आदमी नौका पर आओ। हम लोग जल को पार करके, जहाँ वह था गये। वह इतना थका था कि किनारे से नहीं चढ़ा सकता था लेकिन वह हमारे कोट के कालर को पकड़कर ऊपर चढ़ा लेता था। फिर ही वह अपनी यात्रा आरम्भ करता था। नौका का कुछ भाग मशीनगन की गोलियों से छिद गया था। वह बड़बड़िया व्यक्ति की तरह चिल्लाया था—'नाव की सतह पर बैठो। और निगोड़ी हंसिनी हम लोगों के ऊपर चारों ओर चक्कर काटती रही थी।

उसने बताया यह हंसिनी शुभ थी। अपने दांतों में रस्सी दबाये वह हंसिनी को देखता हुआ मुस्कुराया था—जैसे उसे जन्म से ही जानता हो।

वह हमें केन्टिश मेड से बाहर आया और मुड़कर दूसरे चक्कर के लि चला गया। वह सारे अपरा और रात में भी चक्कर लगा रहा क्योंकि जलते डनकर्क के प्रकाश ऐसा करना संभव था। वह नहीं जान था उसने कितने चक्कर लगाये, लेकि एक क्लब के मोटरबोट और पूल से आय एक बड़ी नौका, जो साथ आई थी, मिलकर बिना किसी को खोये, हम लो को वहाँ से निकाल लाये। जब हम लो चल पड़े, उसने विदा में हाथ हिलाये वह डनकर्क की ओर चला गया। औ हंसिनी भी उसके साथ। ब्लिचो आग में चमकती तुच्छ बड़ी हंसिनी क आसमान में चारों ओर उड़ते देख अनोखा लगता था। धुआँ से एकद अलग, सफेद देवदूत-सी।

हम लोग कभी नहीं जान पा उसका क्या हुआ था, वह कौन था- अवश्य ही वह एक अत्यन्त भ आदमी था — वह आदमी······। आर्टिल मैन ने सुबकते हुये कहा — एक खूबसू विशाल हंसिनी।

और फिर ब्रुक-स्ट्रीट के आफिस क्लब के अवकाश-प्राप्त नौसे अधिकारी, डनकर्क को खाली कराने दिनों के अनुभव सुना रहे थे। 'क तुम एक जंगली हंसिनी के बारे

अनोखी कहावत सुन चुके हो ?' जिन आदमियों को मैं वापिस ले आया, उनमें से कुछ इसके बारे में बातें कर रहे थे। यह माना जाता है कि वह आखिरी बार डनकर्क और ला-पेनी के बीच दिखलाई पड़ी थी।

त्रिल अडनायर कह रहा था—मैंने एक पालतू हंसिनी को देखा। अत्यन्त अनोखा अनुभव--एक तरह से दुखान्त भी। लेकिन हम लोगों के लिये शुभ। इसके बारे में बताता हूं। तीसरे चक्कर वापस आते हुये करीब छः बजे सुबह हम लोगों ने मानव-विहीन छोटी नौका देखी। उसमें एक व्यक्ति दिखाई पड़ा। उसके किनारों पर एक पक्षी भी था। जब वह हम लोगों के समीप आई, उसे देखने के लिये हम लोगों ने अपना रास्ता बदल दिया। ईश्वर जानता है ! यह एक मनुष्य था, जो मशीनगन से मारा गया था। सर पर भयानक चोट आई थी। नीचे पानी की ओर औंधा पड़ा था। पक्षी शायद एक पालतू हंसिनी थी।

नजदीक पहुँचने पर हम लोगों में से, एक जब उस तक पहुंचा तो पक्षी ने उसके ऊपर फुफकार कर डैनों की चोट की। हम उसको दूर नहीं भगा सके। अचानक युवा केटरिंग, जो मेरे साथ था, ने मझे बुलाया और दाईं ओर इशारा किया। किनारे बड़े-बड़े विस्फोटक पदार्थ वह रहे थे। यह जर्मनों के कारनामों में से एक था। अगर हम अपने उसी रास्ते पर होते तो ढेर हो चुके होते। विस्फोटकों को अपनी आखिरी नौका से १०० गज दूर जाने पर, हममें से एक व्यक्ति ने राइफल से इनको उड़ा दिया।

जब हम लोगों ने फिर अपना ध्यान परिव्यक्त नाव की ओर दिया, वह डूब चुकी थी। उसके साथ बेचारा व्यक्ति भी। पक्षी उड़कर चक्कर काट रही थी। तीन बार जैसे विमान-सैल्यूट हो अत्यन्त अनोखी अनुभूति थी। फिर वह पश्चिम की ओर उड़ गई।

× × × ×

प्रकाश-स्तम्भ पर फ्रिया पालतू पक्षियों की देख-भाल करती हुई अकेली थी। एक अनजानी चीज की प्रतीक्षा में। बाद में वह प्रकाश-स्तम्भ के स्टोर रूम में इकट्ठे किये गये चित्रों के बीच घूमती रही थी। इनमें से उसने अपने उस चित्र को भी पाया जिसमें रेडार ने, अपनी स्मृति से कई सालों पहले उसको एक दुर्बल, हवा से सहमी अपनी गोद में घायल पक्षी को चिपकाये बालिका के रूप में चित्रित किया था। इन चित्रों को एवं अन्य वस्तुओं को देखकर वह इतनी स्पंदित हुई जितनी कभी नहीं, क्योंकि रेडार की सम्पूर्ण आत्मा इसमें प्रवेश कर गई थी। आश्चर्य ! इसी समय उसने हंसिनी का भी चित्र बनाया था—दूसरे प्रदेश

से आकर तूफ़ानग्रस्त हो गयी जंगली पक्षी, जिसने इनको मित्र बनाया था।

काफी पहले जब हंसिनी प्रकाश-स्तम्भ के ऊपर विदा होने के लिये रक्ताभ आकाश में चक्कर काट रही थी, फ़िथा अपने अन्दर बहते प्राचीन रक्त से ही जान गई थी, कि रेडार लौटकर नहीं आयेगा।

और इसीलिये जब एक दिन सूर्यास्त को उसने आकाश से ऊँचे स्वर में परिचित चीत्कार सुनी।

वह भागी हुयी समुद्री दीवार के पास आई, और ऊपर आकाश की ओर देखने लगी जहाँ चमकती पंख वाली हंसिनी दिखलाई पड़ सकती थी—और उसने समुद्र की ओर देखा जहाँ दूर तैरती नौका दिखलाई पड़ सकती थी। लेकिन वहाँ दूर तक कुछ नहीं था तब उसकी दृष्टि, आवाज और आसपास की स्तब्धता ने उसके अन्दर बंधे बांध को तोड़ दिया प्रबल आंसुओं के वेग में, उसकी प्यार की सच्चाई वह निकली।

जंगली भावनाएँ जंगली भावनाओं को जन्मती हैं। और वह विशाल पक्षी के साथ आकाश में उड़ने लगी। उसने महसूस किया—'रेडार संदेश दे रहा है।'

'फ़िथा! फ़िथा! मेरी प्यारी! विदा मेरी प्यारी!' और उसका हृदय जवाब दे रहा था—'फिलिप! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।'

एक क्षण के लिये फ़िथा को ऐसा लगा कि हंसिनी पुराने बाड़े में उतरने जा रही है क्योंकि पालतू हंस स्वागत-ध्वनि निकालने लगे थे। लेकिन वह केवल नीचे की ओर झुकी, फिर ऊपर उड़ी और एक भव्य विस्तृत परिधि में प्रकाश-स्तम्भ का चक्कर काटने के बाद ऊपर को चढ़ने लगी।

उसको देखते हुये भी फ़िथा ने हंसिनी को एक क्षण के लिये भी नहीं देखा, क्योंकि वह उससे सदैव के लिये विदा लेती हुयी रेडार की आत्मा लगी।

अब वह उसके साथ न उड़कर जमीन पर थी। उसने अपनी बांहों को आकाश में फैलाये पंजों के बल खड़ी होकर चीख उठी—

'ईश्वर भला करे! ईश्वर भला करे!' फ़िथा के आँसू शांत हो गये। हंसिनी के अदृश्य हो जाने पर देर तक वह वहीं खड़ी रही। तब वह प्रकाश-स्तम्भ में गई और उस चित्र को लिया जिसमें रेडार ने उसको चित्रित किया था। अपने सीने से उसे चिपकाये हुये, समुद्री दीवार के किनारे से घर की ओर चल पड़ी।

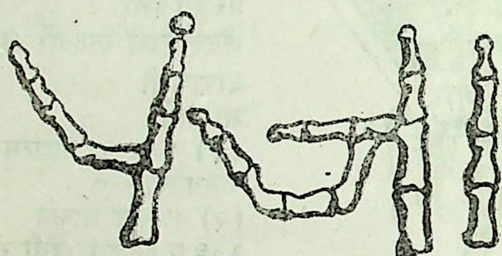
इसके पश्चात कई सप्ताह तक फ़िथा प्रत्येक रात्रि को प्रकाश-स्तम्भ पर आकर पक्षियों को चारा देती रही। तब एक सुबह एक जर्मन पायलट ने प्रातःकाल की रोशनी में गलती

पुराने निष्क्रिय प्रकाश-स्तम्भ को महत्वपूर्ण सैनिक ठिकाना मानकर उस पर बम गिरा दिया। एक भयंकर चीख-चिल्लाहट के साथ, सब कुछ अतीत हो गया।

उस शाम फ्रिथा जब वहां आई, समुद्र ने दीवारों के अन्दर प्रवेश कर सब कुछ अपने अन्दर समेट लिया था। निस्तब्धता भंग करने के लिये कुछ भी नहीं बचा था। कोई दलदली प्राणी बचकर निकल नहीं पाया था। केवल निर्जीव दलदली खाइयाँ हिल रही थीं।

अनु: श्रीमती मीरा जायसवाल
४१ एल०/४ सिंधु रोड
साकची, जमशेदपुर

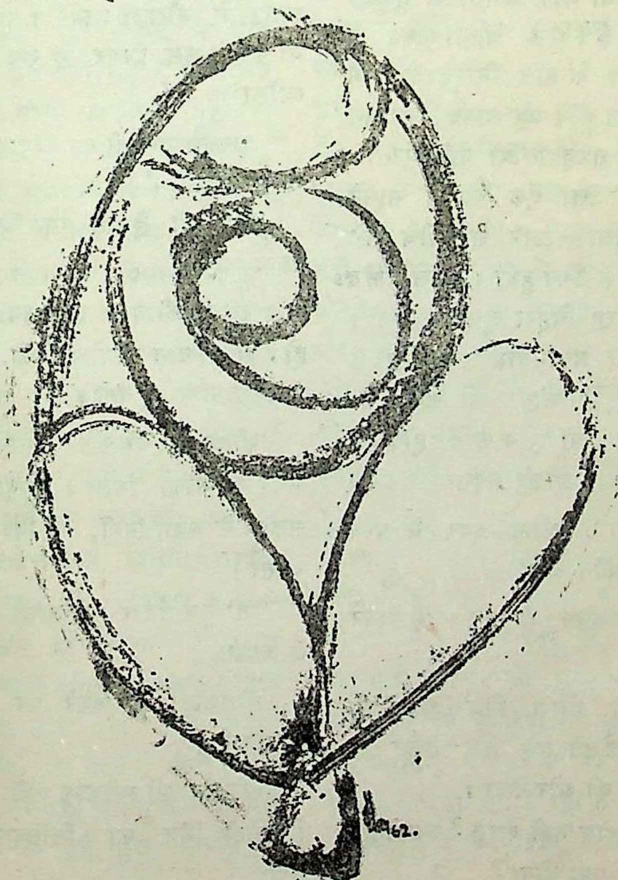
बंगला नवलेखन



तब तक रात गहराई हुई थी। आखिरी ट्राम डिपो की ओर तेज चाल से दौड़ गई। मकान तुरन्त कांप गया। विप्लव तब भी उपन्यास में मग्न है। खाने-पीने के बाद हरेक रात को उपन्यास पढ़ना उसकी आदत है। उपन्यास की विमिश्र जटिलता में स्वयं को बांधकर, आलोड़ित होकर पसीने-पसीने होते हुए सहसा इन सभी से स्वयं को मुक्त करके उसने एक आवाज सुनी। इन्द्रियां सतर्क हो गईं। पहरेदार के बायोनेट की तरह उसके दोनों बड़े-बड़े कान आवाज को निगलने के लिए मुँह बाये रहे। दरवाजे के बाहर से आवाज सांप की तरह सरकती हुई भीतर की ओर आ रही है। विप्लव ने एक बार बाहर की ओर देखा। कमरे के भीतर से एक पतली-सी रोशनी की लकीर बाहर के चबूतरे पर पड़ रही है। लगा, आवाज की उत्पत्ति-स्थल चबूतरे के आसपास ही कहीं है। पर ठीक निश्चय नहीं कर सका। चबूतरे के एक तरफ कुछेक कुर्सियां हैं। चबूतरा पार करते ही चौकोन आंगन है। इसके उस तरफ पूजा के कमरे की टूटी दीवार। जगह-जगह पलस्तर, कड़ी-पुरानी छोटी-छोटी ईंटे दांत निपोरे खड़ी हैं। पीछे नीम के पेड़ की फुनगियों पर तहाया हुआ

दिनेश राय

अँधेरा। आवाज लगातार आ रही है। विप्लव सचेत हो रहा है। पर तब भी उठकर कारण जानने का उत्साह नहीं महसूस कर रहा है। हालांकि यह आवाज उपन्यास पढ़ने की तल्लीनता में आघात पहुँचा रही है। ऐसी स्थिति उससे सही नहीं जाती। उपन्यास का प्रधान चरित्र तीनकौड़ी मित्र अभी उसे तल्लीन रखना चाहता है। उनका जीवन विस्मयकारी है। दरअसल, तीन-कौड़ी मित्र के जीने की प्रक्रिया ने उसे शुरू से ही आकर्षित किया है। बीच-बीच में अविश्वास से भौंहें टेढ़ी करके भी विप्लव तीनकौड़ी मित्र के बारे में लेखक का विश्लेषण एकदम उड़ा नहीं पाया। वह जब स्वयं ही सिर्फ शारीरिक कारणों से सो नहीं पा रहा है, तब तीनकौड़ी मित्र के प्रच्छन्न शून्यता बोध के होते हुए भी आजीवन आलस्य, आहार, संभोग, निद्रा की आशक्ति की



परस्पर विरोधिता की व्याख्या ढूँढ़ने की चेष्टा में था। तीनकौड़ी मित्र के साथ अभी ईश्वर का समझौता चल रहा है। सारी पार्थिव सफलताओं के बावजूद भी, मृत्यु के सामने खड़े होकर तीनकौड़ी मित्र ने स्वीकारा है, 'इतने दिनों तक मैं एक अयथार्थ जगत में था। पशु की तरह खाता रहा हूँ और स्वयं को क्षयित करता रहा हूँ। सात संतानों का पिता हूँ मैं। तब भी मेरी आन्तरिक बुभुक्षा कम नहीं हुई है। मुझे चेतना जगत के दैनंदिन जीवन के प्रति निस्पृहा है। मैं अब भी अतृप्त हूँ। यह शायद चिरन्तन सत्य है—इस तरह अतृप्ति नहीं मिटती। तीनकौड़ी ने देखा एक व्यक्ति सामने आ खड़ा हुआ—ऊपर से नीचे तक काली चादर से ढँका हुआ। केवल सफेद कागज की तरह चेहरा खुला हुआ है। दोनों आंखें अमानवीय धृष्टता से दुर्विनीत हैं। तीनकौड़ी को लगा कि उस व्यक्ति के दोनों हाथ लम्बे होते हुए उसके गले के पास आकर सहसा रुक गये।

तीनकौड़ी ने क्षीण स्वर में प्रश्न किया, 'आप कौन हैं?'

प्रतिध्वनि-जैसा है स्वर। 'मैं ईश्वर हूँ।'

तीनकौड़ी हँसे। फिर आंखों से अविश्वास उँडेलते हुए तेज दृष्टि से उन्होंने ईश्वर की ओर देखा।

'तुम विश्वास नहीं करते? जानते हो इसका नतीजा क्या होगा?

'ऐसा भी क्या नतीजा होगा' ईश्वर ने ठहाका लगाया। तीनकौड़ी मित्र तनिक चकित हुए।

'मेरे दोनों हाथ देख रहे हो?'

'हां, देख रहा हूँ। तुम्हें ईश्वर मानने की इच्छा नहीं है मुझे। पृथ्वी पर मनुष्य ईश्वर के बारे में दूसरी धारणा रखता है। तुम अस्थि-पंजरमय प्रेत हो। मैं तो दूर रहा, ईश्वर-भक्त भी तुम्हें देखकर आतंक से बौखला जायेंगे। तुम्हें कोई भी कम-से-कम ईश्वर के रूप में नहीं स्वीकारेगा।'

'तब तो सभ्यता का विनाश ही एकमात्र रास्ता है।'

'ऐसा ही है तो हम विनाश ही पसन्द करेंगे।'

'दूसरों की बात तुम क्यों सोचते हो? अपनी बात सोचो। बोलो, तुम मुझे ईश्वर मानोगे या नहीं।'

तीनकौड़ी मित्र को निर्णय प्रगट करने का मौका मिला। उन्होंने बिना संकोच के कहा, 'नहीं, मैं विश्वास नहीं करता।'

'तो तुम तैयार हो जाओ। मैं तुम्हें ले जाऊंगा।'

तीनकौड़ी के चेहरे पर निर्भीक मुस्कान है।

'पर तब भी स्वीकार नहीं करोगे।' तीनकौड़ी मित्र का निश्चित स्वर, 'नहीं।'······

विप्लव फिर चकित हुआ। आवाज कानों में खटक रही है। इस बार उसने देखा एक बिलाव एक चूहे को अपने पंजों के दायरे में रखकर खेला रहा है। चूहा बीच-बीच में सिर्फ चूँ-चूँ कर रहा है। चूहे को छोड़कर बिलाव मजा देख रहा है। बिलाव की आँखों में उत्सव शुरू होने-जैसी तृप्ति है। चूहा चुपचाप पड़ा है। बिलाव का उठा हुआ पंजा उसकी स्पन्दनहीनता को सहन नहीं कर पाता। ऐसे आखेट में कोई खुशी नहीं, उत्तेजना नहीं है। इसलिए बिलाव का पंजा बार-बार चूहे को आहत कर रहा है। चूहा चिंचिया रहा है। विप्लव एकटक देख रहा है। सहसा बिलाव के साथ आँख मिलते ही विप्लव ने देखा कि बिलाव बिल्कुल निश्शंक है। एक काफी बड़ा चूहा काबू में ले आने के गर्व से वह उद्धत है। विप्लव ने दो-तीन बार हांक लगायी। बिलाव ने सुनकर भी अनसुना कर दिया। सिर्फ दाँतों में चूहे को दबा कर तनिक अंधेरे में सरककर खड़ा हो गया। विप्लव ने देखा, बिलाव की आँखें बहुत चमक रही हैं। विप्लव के उठकर बैठते ही सहसा तख्तपोश चरमरा उठा। तनिक चौंककर बिलाव अँधेरी गली की ओर दौड़ गया। विप्लव फिर बैठ गया। दोनों आंखें गली की ओर लगी हैं। कुछ देर बाद गली से आती हुई कुछ धड़धड़ा कर गिरने की आवाज से उसके स्नायु फिर झटके खा उठे बिलाव शायद चूहे की मृत्यु-शैय्या तैयार करना चाहता था। पर गलत जगह पर। बैठते ही कोयले की ढेरी के एकाएक नीचे की ओर खिसक जाने के कारण बिलाव चूहे के साथ नीचे गिर पड़ा था। इस असम्भावित दुर्घटना में बिलाव का मुँह खुलते ही चूहे ने एक बार भागने की चेष्टा की। भयभीत चूहा जी-जान लेकर भागा पर थोड़ी दूर जाकर शिथिल पड़ गया। विप्लव ने देखा, उसके शरीर के रोंगटे खड़े हुए जा रहे हैं। नस-नस में सिहरन दौड़ रही है। बिलाव ने धीरे-धीरे आगे आकर चूहे को दांतों में दबा लिया। वह अब देख नहीं पा रहा है। झट से एक डंडा लेकर दौड़ते ही बिलाव घबड़ाकर उसके पकड़ से बाहर जाकर गायब हो गया। उसे इच्छा हो रही थी, कि बिलाव को दो हाथ जमाये। तब करीब-करीब बदला पूरा हो जाता। पर बिलाव बड़ा धूर्त, बड़ा तेज और बड़ा धीरवान है। बिलाव की सारी इन्द्रियाँ भी हमेशा सतर्क हैं। बिप्लव को लगता है वह हारता जा रहा है। दरअसल, एक चूहे की मृत्यु से बिप्लव आलोड़ित नहीं हो रहा है। मृत्यु नामक इस भयानक प्रक्रिया से वह स्वयं को आफत में पड़ा समझ रहा है। जबकि तीनकौड़ी मित्र कितना निर्विकार है।

मृत्यु के सामने ही मृत्यु को अस्वीकार करने की दृढ़ता तीनकौड़ी के जीवन का मूलधन है। तीनकौड़ी के चरित्र की ऋजुता-अटलता ... में विप्लव स्वयं बहुत असहाय, टूटा हुआ और छोटा मनुष्य है। इसलिए तीनकौड़ी उसे बहुत अच्छा लग रहा है। विप्लव फिर उपन्यास के पन्नों में खो गया। मृत्यु के आगमन पर तीनकौड़ी वीर योद्धा बन गया है। विप्लव दम रोके पढ़ रहा है: तीनकौड़ी मित्र......आँख मूँदकर लेटे हुए हैं। कमजोर छाती साँसों के साथ ऊपर-नीचे हो रही है। नाक से धौंकनी की तरह ऊंची, अनियमित आवाज समूचे कमरे में उकताहट पैदा कर रही है। सिरहाने बैठी पत्नी रो रही है। और कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है। दोनों लड़के-लड़कियाँ तीनकौड़ी की आज्ञा से अपने काम में लगे हैं। काम की अकारण अवहेलना उन्हें पसन्द नहीं है। पत्नी ने उनका एक हाथ अपने हाथों में दबा रखा है। उभरे हुए पतले, सख्त नसदार हाथ में गर्माहट नहीं है। डाक्टर के माथे पर फिक्र की लकीरें। पर तब भी काफी निर्विकार भाव से उनकी नाड़ी पकड़े बैठे हैं। तीनकौड़ी ने बुदबुदाते हुए कुछ कहना चाहा। पत्नी सचेत होकर अपने चेहरे को तीनकौड़ी के मुंह के नजदीक ले गईं। शायद कुछ सुन पाये। तीनकौड़ी फिर मौन हो गये। सिर्फ एक बार जोर से साँस लेकर उन्होंने कुछ जाना चाहा। डाक्टर ने तुरन्त नाड़ी छोड़कर सिरिंज तैयार करके इंजेक्शन दिया। कोरामिन।

दस मिनट बाद डाक्टर उठ खड़े हुए।

मिसेज मित्र ने डाक्टर की ओर उत्कंठित दृष्टि फैला दी।

'मिसेज मित्र, आपको तो सब कुछ मालूम है ही। वैसे अभी हार्ट की हालत बहुत अच्छी है। इस बार बच जायेंगे।

मिसेज मित्र का चेहरा आशा से तनिक चमक उठा। तीनकौड़ी मित्र ने फिर कुछ कहना चाहा। चेहरे पर प्रसन्नता है।

पत्नी ने एक बार प्रश्न किया, 'कुछ कहोगे।'

तीनकौड़ी मित्र का सिर दाहिने से बायीं ओर लुढ़क गया। उसके बाद दोनों ओंठ लगातार हिलते रहे।

विप्लव रुका। चूहे-बिलाव की बात स्वत: याद आते ही उसने बाहर की ओर देखा। कुछ नहीं दिखाई पड़ा। घर के आंगन में ढेर-सारे कूड़े पर कमरे की रोशनी खनखजूर की तरह चिपकी हुई है।

मकान की भौतिक निस्तब्धता में बदन सिहर उठता है। उसने सोचा, अब

तक चूहे की अन्त्येष्टि जरूर हो गई होगी। अब बिलाव भरे-पेट की जम्हाई लेकर बैठा आराम कर रहा होगा। हृदय पीड़ा से कनकना उठा। चूहे की विरह व्यथा से नहीं। चूहे के मरने से पहले की स्थिति सोच कर। ऐसा ही असहाय वह स्वयं भी है। उसके परिवार में पत्नी-लड़का-लड़की हैं। सभी की तन्दुरुस्ती खराब है महीने में पन्द्रह दिन डाक्टर-वैद्य के बिना नहीं बीतता। इसलिए महीने में मेडिकल एक्सपेन्स ही लगभग सौ रुपये हैं। दोनों लड़के-लड़की का कमजोर होना उसे बड़ा कष्ट देता है। सिर खपाकर भी वह उनके कमजोर होने का कोई कारण ढूंढ़ नहीं पाता। बच्चे फूल जैसे होते हैं। बचपन में पढ़ा हुआ मुहावरा जैसा ही यह वाक्य कानों में जहर उड़ेलता है। वे फूल तो हैं, पर कीड़े लगे थे। लोग क्यों इतने बीमार रहते हैं—सोचकर कोई आर-पार नहीं सूझता उसे। वह दूसरे लोगों से लगभग अच्छा खिलाता है, अच्छा पिलाता है। उन्हीं के लिए लगभग दुगने किराये पर यह मकान ले रखा है। पुराना होने पर भी हवा रोशनी की कोई कमी नहीं है यहां पर इतना सब होते हुए भी उनकी तंदुरुस्ती के बारे में निश्चिन्त नहीं हुआ जा सका है। सबसे अधिक अपनी तन्दुरुस्ती……। उनकी भलाई के लिए ही विप्लव हमेशा अपनी बात सोचता है लड़के को आदमी बनाने में, लड़की की शादी करने में अभी भी कम से कम बीस वर्ष तक नौकरी करते हुए जीवित रहना बहुत जरूरी है। वह यह अच्छी तरह जानता है कि उसकी अनुपस्थिति में पत्नी-पुत्र कन्या का एक मात्र पथ मृत्यु है। विप्लव जी जान से विश्वास रखता है कि जीवित रहने के लिए यदि सतीत्व विसर्जन अनिवार्य हो तो प्राण बचाने के लिए वैसे ही करना जरूरी है। स्वेच्छा से मृत्यु वरण करने में असमर्थ युवती शरीर बेच कर अपने को जीवित रख सकती है। पत्नी रेणु भी शायद जीवित रहेगी। पर मुन्ना और झिमली (कितने प्यार का नाम) विश्वास आत्म-सम्मान के अभाव में रूखे-रूखे हो जायेंगे। उसकी अनुपस्थिति में मुन्ना यदि जीवित रहा तो बदमास-चोर-बटमार बनेगा। विप्लव की आन्तरिक इच्छा है कि यदि नीचे ही उतरना है तो स्मगलर, गैंगस्टर बनना ही अच्छा है। परन्तु झिमली। विप्लव स्वयं को कमजोर महसूस करता है। खून में आकुलता है बच्चे को सावधानी से बड़ा करना, जीवन में प्रतिष्ठित करना प्रचलित जीवन-दर्शन की बातें हैं बड़ी कठिनाई से वह अपनी अनुपस्थिति में झिमली के भविष्य के बारे में सोचता है। दिन काटने के लिए शायद यौवन के बदले में भोजन जुटाना होगा। ऐसी ही चिन्तायें प्रायः उसे सताया करती हैं।

क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि शरीर के अनेक पुर्जों में से अधिकांश ही लगभग बेकार हो गये हैं। इस हालत में अगले बीस वर्षों तक जीने की बात में सोचना निरी कल्पना है। यदि बच भी जाए तो बदन में काम करने की ताकत बिल्कुल नहीं रह जायेगी। तब पत्नी, पुत्र, कन्या की भ्रष्टता आँखों देखनी पड़ेगी। विप्लव मानता है कि जीवित रहने के लिये आदमी को कुछ भ्रष्ट होना ही पड़ता है। इसमें कोई दोष नहीं है। उनका भ्रष्ट होना उसे उतना दुखी नहीं करेगा जितना अपने अस्तित्व का दुर्वह बोझ उन पर लादना। कभी-कभी वह भुलाने की चेष्टा करता है। जैसे चलता है चलने दो। ज्यादा सोचने-विचारने से ही झमेला है। लेकिन जब फिर से झिमली बुखार की रौव में काँखती रहती है तब उसके सिर में पानी-पट्टी देते-देते रात की नीरवता में यही फिक्र-चिन्ताएँ घूम-फिरकर उसे सताया करती हैं। वैसे दो दिन अच्छी रहने पर झिमली लाड़ से गले से लिपट-कर कहेगी, 'बप्पा, कब चिड़ियाखाना दिखाने ले जाओगे, बताओ न? जल्दी ले चलो। तुम बहुत देर लगाते हो।' दो दिन पहले या अगले दिन की बीमारी की बात नहीं याद आयेगी। विप्लव उन लोगों के लिए स्वयं को बहुत दुखी अनुभव करता है। उसमें निहित पीड़ा के सक्रिय अंश को विप्लव भूल नहीं सकता। फिर भी, अच्छी तन्दुरुस्ती दे सकने पर उसका क्षोभ तनिक कम होता। पर वैसा नहीं हुआ। डाक्टरी मक्कारी और मिलावटी दवाओं की कृपा से उनकी बीमारी लम्बी होगी। और फिर पर्याप्त कैलोरी का भोजन जुटाना सचमुच दु:साध्य है विप्लव की समूची खोपड़ी में यही भयावनी चिन्ता घूम रही है। वर्षों से इन्हीं असह्य दुश्चिन्ताओं से विप्लव चूहे की तरह अधमरा है। कभी-कभार दैनंदिन कार्यों और दुश्चिन्ताओं के बीच विप्लव आविष्कार करता है कि इसी हालत में कुछेक वर्ष बीत सके हैं। उस क्षण यह सब अच्छा लगता है। शायद ऐसे ही जीवन बीतता है। विप्लव समझता है, ये क्षण उसके लिए दुर्लभ हैं। इन क्षणों में जीने के गुरुत्व की ऐसी उपलब्धि हुई कि पिछले जीवन के अंध-कारमय अध्याय की बात सोचने पर विप्लव का दिमाग घूम जाता है। तीन-कौड़ी-जैसा चरित्र तब उसे शान्ति देता है। तीनकौड़ी ने बहुत दिन जी लिया था इसलिए वे अब मृत्यु से नहीं डरते। तीन-कौड़ी को हमेशा कदम-कदम पर मृत्यु का सामना नहीं करना पड़ा है, इसलिए उनकी मृत्यु पर इतना समारोह हो रहा है। विप्लव अभी लगभग अनुत्तेजित है। वह फिर उपन्यास में तन्मय हो जाता है।

'तीनकौड़ी मित्र के होंठ लगातार हिलते रहे। उन्होंने देखा, कमरे की

खिड़कियाँ न जाने किसने खोल दी हैं। दीवारें भूकम्प से भहरा पड़ी हैं। लगा, वे स्तूपों के बीच लेटे हुए हैं। सनसनाती हुई हवा में धूल की भरमार है। उनके शरीर को उड़ा ले जाना चाहती हैं।

तीनकौड़ी मित्र निर्भय हैं। मृत्यु के पंजा लड़ाने का मौका वे खोना नहीं चाहते। अब तीनकौड़ी ने देखा, चारों ओर घिसे हुए काँच की दीवारें हैं। अब हवा नहीं चल रही है। सनसनाती हुई आवाज भी नहीं है। हड्डी जमाने वाली नीरवता है उनके आसपास। तीनकौड़ी हँस उठे। एक बार जोर से साँस लेने की चेष्टा करने पर उन्हें लगा कि अब समय हो गया है। छाती सूखकर जैसे सिकुड़ती जा रही है। आखिरी साँस लेते-लेते लगा कि, अभी वेहोश हो जायेंगे। ठीक इसी समय लगा की काँच की दीवारें गायब हो गई और एक अमानवीय कंठ-स्वर से वे संत्रस्त हैं। तीनकौड़ी ने पहले छाती भरकर साँस खींची। फिर आँख खोलकर देखा, झुंडभर अंधेरा उन पर आक्रमण कर रहा है। निर्जन हॉल में कोई जैसे लाउडस्पीकर पर बोल रहा है। तीनकौड़ी को मालूम है, उन्हीं के लिए है यह आवाज। वह स्वर ध्वनित-प्रतिध्वनित होकर क्रमविहीन हो गया है और उनके कानों से टकराने लगा है। तीनकौड़ी ने सभी इन्द्रियों को सचेत रखकर समझने की चेष्टा की। सुना, 'तीनकौड़ी देख रहे हो मेरा पराक्रम। अभी भी समय है, सोचकर देखो। यदि स्वीकार कर लो तो कुछ ही दिनों में मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूँ।'

तीनकौड़ी ने विस्मय के साथ गौर किया, ईश्वर नामक वह व्यक्ति पराजित हो गया है। ईश्वर मनुष्य के साथ अपने समझौते की असफलता अनुभव कर रहे हैं। इसलिए वे अपने अस्तित्व का उद्देश्य ढूँढ़ने निकले हैं। लेकिन तीन-कौड़ी मित्र जैसे गतायु, उद्यमहीन बूढ़े आदमी को भी वे अनुगत नहीं बना पा रहे हैं। तीनकौड़ी मित्र जैसी ही उनकी हालत है। अस्तित्व उद्देश्यहीन, अर्थहीन है। तीनकौड़ी के चेहरे पर अवज्ञा भरी मुस्कान की छाप है। उस व्यक्ति का वज्र जैसा स्वर फिर सुन पड़ा, 'तीन-कौड़ी मित्र, तुम्हारी उद्दण्डता सीमा पार कर रही है। तुम्हें मैं अंतिम अवसर दे रहा हूँ। यदि नहीं मानोगे तो तुम्हें मैं अनन्त कष्टों के नरक में भेज दूँगा।'

तीनकौड़ी मित्र के चेहरे पर अटूट मुस्कान है। सिर्फ बोले, 'सच कहा जाये तो सारी जिन्दगी मैंने जितने असह्य दुख-कष्ट उठाये हैं, उनका इतिहास अगर आपको मालूम होता तो आप मुझे अनन्त कष्टों के नरक में भेजने की बात कहकर डराने की चेष्टा नहीं करते।'

तीनकौड़ी ने थकान से आँखें बंद कर ली। आँख खोलने पर देखा, सामने एक छाया-मूर्ति है। अस्वाभाविक ढंग से ऊँची।

'तुम्हें तो कोई कष्ट-तकलीफ नहीं होना चाहिए था। तुम्हें मैंने सब कुछ दिया था।'

तीनकौड़ी ने फिर असन्तोष प्रकट किया, 'नहीं, मुझे जो मिला था उससे मेरा अभाव दूर नहीं हुआ।'

वह व्यक्ति गंभीर हो गया है।

'तुम लोगों की चाह अनन्त है। जितना दो, उतनी ही तुम्हारी आकांक्षायें अभिलाषायें बढ़ती जाती हैं।'

'यह बात झूठी है। दरअसल, पृथ्वी एक ऐसी राह पर जा रही है, जहाँ तथाकथित ईश्वर के करने लायक कुछ भी नहीं है। मैं कभी भी अपने जीवन को सार्थक नहीं समझ सका। इन सत्तर वर्षों तक अर्थहीन जीवन जिया है मैंने। दो कार्यों में मैं सबसे अधिक विभक्त हुआ हूँ। आहार और संभोग। उफ्! हर बार ही मैंने सिर पीटा है, क्रोधित हुआ हूँ। और सोचा है कि यह कैसा जीवन है। ऐसा जीवन तो कुत्ते-बिल्लियों का भी है।

'यह तुम्हारा व्यक्तिगत पागलपन है। इसमें कष्ट कहां है'

'यह आप नहीं समझेंगे। इच्छा के विरुद्ध काम करने का कष्ट आपके समझ से बाहर की बात है। यह मेरा अपना कष्ट है। मेरे लिए इससे बड़ा कोई कष्ट नहीं है। इसलिए मुझे किसी नये कष्टमय नरक का भय नहीं है। अपनी क्षमता दिखाने के लिए आप मु वहाँ ले जा सकते हैं।

'पर तब भी तुम नहीं मानोगे कि ईश्वर हूँ।'

तीनकौड़ी के स्वर में प्रचण्ड क्रोध 'नहीं नहीं नहीं।'

कमरा फिर शान्त-नीरव है। तीन कौड़ी क्लान्त और अवसन्न हैं। उन्हों आंख मूँदकर सोना चाहा। पर नीं नहीं आयी। सहसा धमधमाने की आवा सुनकर आंखें खोलते ही देखा, जल हुई दो आंखें उनकी ओर देख रही हैं दोनों आंखों से निकलकर आग की लपटें उनके शरीर को झुलस रही हैं तीनकौड़ी ने कहा नहीं। सिर्फ भौं सिकोड़कर देखा कि देह का चम जलकर राख हुआ जा रहा है आंखों चारों ओर कुछेक कंकालों के भयाव नृत्य ने उन्हें विस्मित कर दिया उनकी खिलखिलाहट के कम्पन से कम महरा जा रहा है। आँखों के नजदी आग के पहुँचते ही वह व्यक्ति फि सामने आ खड़ा हुआ।

'मान लो, नहीं तो अब दोनों आँखें और हृत्पिंड जलकर राख हो जायेंगे। तीनकौड़ी के चेहरे का भावान्तर गौ नहीं किया जा सका। 'सब कुछ त खत्म हो चुका है। अब ये भी क्यों बाकी रहे? मृत्यु का डर मुझे नहीं है।' ईश्व विचलित हुआ। मानव-समाज

ीनकौड़ी के जैसा रोष व्यापक रूप से ंक्रमित हो गया है। सृष्टजीव अब सृष्टा े अधीन नहीं रहना चाहते।

'तीनकौड़ी मित्र मैं, तुम्हें सौ वर्षों का म्बा जीवन दे सकता हूँ, यदि तुम मान ो।'

'मैंने तो कह दिया है कि अब मुझे ीवन की चाह नहीं है। यह धरती मुझे ुछ नहीं दे सकी।'

'क्य चाहते हो तुम?'

'जो मैं चाहता हूँ, वह तुम नहीं े सकोगे। और फिर तुम जैसे अज्ञात ुलशील को अपनी इच्छा-अनिच्छा की ात बताने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।'

तीनकौड़ी इस बार असहनीय थकान े पस्त हो गये। लगभग उनींदी हालत ें उन्होंने मधुर शंख-ध्वनि सुनी। उन्होंने ांख खोलकर देखा सामने दिव्य कांतिमय ो मनुष्य खड़े हैं। ईश्वर भाग गया ै।

'चलिए, आप कहां रास्ता भूल गये े? अब तक आपका समय पूरा नहीं ुआ है।'

तीनकौड़ी दुखी हैं। अवसाद ने उन्हें ौर विवश कर दिया है। बोले, 'मैंने ोचा था, अब मुझे कष्ट नहीं उठाना ड़ेगा।'

'नहीं, अभी भी आप जीवित रहेंगे। रन्तु ईश्वर के आदेश से अब बुढ़ापा ापका चिरसंगी रहेगा।'

'पर यह तो विज्ञान का युग है बुढ़ापा मुझे अधिक दिनों तक निकम्मा बनाकर नहीं रख सकेगा।'

'ठीक है। तब आपको बुढ़ापा और विज्ञान का द्वन्द देखने का अवसर दिया जाता है।

तीनकौड़ी मित्र फिर से, जाग पड़े। डाक्टर की बात ही ठीक निकली। इस बार वे बच गये हैं।

विप्लव सोच रहा है। तीनकौड़ी मित्र के पुनर्जीवन से वह आश्वस्त है। अपने जीवन के साथ तुलना करने पर वह दोनों में कोई सामंजस्य नहीं ढूंढ़ पाता है। विप्लव के विचार से तीन-कौड़ी का जीवन-मृत्यु एक सुदृढ़ दार्शनिक नींव पर प्रतिष्ठित है। इसीलिए वे ईश्वर और मृत्यु-भय की उपेक्षा कर सके हैं। वैसे प्रचुर प्रतिष्ठा-सम्पन्नता और पारिवारिक स्वास्थ्य होने के कारण ही तीनकौड़ी मित्र को जीवन में सूक्ष्म जीवन के दार्शनिक नींव को शुरू से देखने का अवसर मिला था। और ऐसा पुनर्जीवन केवल उपन्यासों में ही संभव है। विप्लव महसूस करता है कि उपन्यास के तीनकौड़ी मित्र ने जीवन की बात कम की है। वे अपने रोज के जीने की फिक्र से ही इतने पीड़ित हैं कि दर्शन-तत्व आदि उनके सामने व्यर्थ हो गया है। इसीलिए विप्लव को सरलता से नींद नहीं आती। रेणु के गहरी नींद में सोने पर भी

विप्लव जाग रहा है। अगले बीस वर्षों तक किस तरह अपने शरीर को तन्दुरुस्त रख कर जिया जा सकता है, इसी फिक्र में विप्लव जाग रहा है। कभी-कभी रेणु जागने पर विप्लव को बगल में न देखकर नींद की अलसता में भी भयभीत हो जाती। फिर झाँककर नीचे के कमरे में रोशनी देखकर आश्वस्त होती। समझ जाती, विप्लव नीचे किताब के पन्नों में डूबा हुआ है। रेणु जानती है, विप्लव सिर्फ समय बिताने के लिए नहीं पढ़ता। जीवन की विचित्र शठता, छलावा, प्रवंचना का उपयुक्त विश्लेषण ढूँढ़ता है। विप्लव कहा करता है, 'मनुष्य क्यों जीता है, मेरी समझ में नहीं आता। उठकर खड़े होने की ताकत नहीं है, पर तब भी हम जीते हैं। स्वाँग भरकर शादी-ब्याह करते हैं, फिर लगातार संतानों के माता-पिता बनते रहते हैं।' रेणु ने देखा है, बात करते-करते विप्लव का चेहरा पीड़ा से विकृत हो उठता है। रेणु डरती है। विप्लव को उसने कभी खुश नहीं देखा। जरा भी उत्साह-आवेग नहीं है। विषण्ण अंधकार के आवरण में लिपटा हुआ है विप्लव। इसीलिए रेणु डरती। उसने जब देखा कि इस परिवार के चारों प्राणी तन्दुरुस्ती किसे कहते हैं नहीं जानते, तब उत्कंठा उसके गले में आकर रुद्ध हो गई। अपने लिए नहीं, मुन्ना या झिमली भी उसे इतने फिक्र में नहीं डालते, जितना विप्लव खुद उसे फिक्र[illegible] कर देता है। इसलिए वह विप्लव[illegible] रात्रि-जागरण में बाधा डालने की चेष्[illegible] करती। विप्लव तिरछी नजर से देखक[illegible] कहता, 'क्यों, तुम फिर क्यों उठकर [illegible] गई?'

रेणु जम्हाई लेकर तख्तपोश [illegible] पैर मोड़कर बैठती है, कहती है—'[illegible] कब तक पढ़ोगे?'

विप्लव चेहरा उठाये बिना कह[illegible] है, 'जब तक नींद न आये।'

'वैसे ही तुम्हारी तबीयत ठीक न[illegible] है, अब इस तरह जागकर कहीं बीमार [illegible] पड़ जाओ।'

विप्लव बीमारी की बात पर झुं[illegible] लाहट अनुभव करता है। 'तुम [illegible] कहना चाहती हो, साफ-साफ कहो।'

रेणु ने घूँट निगला। फिर [illegible] और संकोच के साथ कहा, 'कहना न[illegible] चाहिए, पर इस अनियम के कार[illegible] अगर तुम्हें कुछ हो जाये तो।'

विप्लव ने उपन्यास बंद कर दिया सीधी नजर से रेणु की ओर देखा वहां निर्भरता नहीं है। सुरक्षा न[illegible] है। अशान्त दोनों आंखों की पुतलि[illegible] किसी अजाने आशंका से म्ला[illegible] हैं।

'क्या सोचती हो, कहीं मर [illegible] जाऊँ?'

रेणु ने सिर झुका लिया। वह विप्लव के आँखों में आंखें नहीं रख सकी। हृदय में असहाय कातरता है।

'तुम्हारे लिए मुझे घबड़ाहट नहीं है। बाल-बच्चों की फिक्र है। वे भी जरूर मर जायेंगे।'

रेणु विप्लव की ये निर्मम बातें सह नहीं सकती। मन जलने लगता है। तिक्त होकर कहती है, 'अपनी बात मैं छोड़ देती हूँ। पर उनके लिए भी क्या तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं है, कर्त्तव्य नहीं है?'

विप्लव कहता है, 'पता नहीं।'

रेणु चीख उठती है, 'तुम ढोंगी हो। तुम्हारे पास हृदय नहीं है, पत्थर है पत्थर। इसीलिये आज मेरा मुकुल दुनिया में नहीं है।'

विप्लव हँसता है। यह हँसी रेणु को रुलाती है। विप्लव जानता है, रेणु रोयेगी। पर तब भी इससे ज्यादा मुलायमियत के साथ वह रेणु से बात नहीं कर सकता। वह सोचता है, यदि रेणु को वह भरोसा देता, काफी आशा भरी बातें करता, प्यार के लवणाक्त जल में डुबो देता तो यह कपट आचरण होता। जब अगले बीस वर्षों तक उसके न जीने की सम्भावना ही अधिक है, तब कैसे कहा जाये कि मुझे कुछ नहीं होगा। मैं सचमुच जीवित रहूँगा। मुकुल उनकी पहली संतान की मृत्यु समझ पाने के पहले ही हो गई थी। विप्लव को उसके लिये किसी ने शोक करते हुए नहीं देखा। सभी विस्मय-विमूढ़ हो गये थे। सबसे अधिक रेणु आहत हुई थी। बहुत दिनों बाद रेणु बात को घुमाकर बोली थी, 'वह तो चला गया, पर तुम्हारे मन को क्या लगा, यह मालूम न हो सका।' उसका उत्तर पाकर रेणु और ज्यादा चकित रह गई थी। विप्लव ने कहा था, 'अच्छी तरह नहीं मालूम कि कितनी चोट लगी थी। पर इतना मालूम हुआ कि किसी भी क्षण तुम्हारी, मेरी, मुन्ना की, झिमली की मृत्यु हो जा सकती है।' रेणु ने फिर इस आदमी से कोई प्रश्न करने का साहस नहीं किया। विप्लव को याद आता है, मुकुल की स्मृति ने एक ही दिन उसे पीड़ित किया था। उसकी मृत्यु के बाद का जन्म-दिन। दिन भर मुकुल अपने समूचे अवयवों के साथ उसकी चेतना पर हावी होकर उसे पीड़ित करता रहा था। उसे तेज बुखार चढ़ा था। तीन से चार। चार से पाँच। पाँच से छः। गहराई हुई रात। सारी रात रेणु सिर पर पानी-पट्टी देती रही, हवा करती रही। पर बुखार कम नहीं हुआ। विप्लव ने सोचा था, रात बीतते ही डाक्टर को बुलाएगा। रात नहीं बीती। मुकुल इससे पहले ही चला गया था। विप्लव को आज भी रेणु से ओरहन सुनना पड़ता है। उसने किसी दिन भी विरोध नहीं किया। दवा-दारू

नहीं हुई थी, यह बात सच है। जन्म देकर जिम्मेदारी नहीं पूरी की गई। विप्लव ने भारी मूल्य चुकाकर सीखा है, महीने के अंत में पूरे सौ रुपयों के बदले में कुछेक टैबलेट, कैप्सुल, इंजेक्शन और पेटेन्ट दवायें घर में आने पर दुनिया खुश है। कहेगी, अच्छा ध्यान रखा जाता है, आगे विधाता का हाथ है। विप्लव मन-ही-मन हँसता है—कैसी है यह दुनिया! यदि मुकुल बुखार से न मरकर बस के नीचे आ जाता तो रेणु उससे प्रश्न नहीं करती। वह जानता है, अगले बीस वर्ष तक न जीने पर मुन्ना और झिमली की मृत्यु यह दुनिया भवितव्य कहकर मान लेगी। पर विप्लव घोष की मृत्यु ही उनकी मृत्यु का कारण है यह सत्य विप्लव पहले ही जानकर चला जायेगा। यदि वे लोग बच जायें तो यही होगी आकस्मिकता।

विप्लव फिर आचंभित है। अभी बाहर नजर पड़ने पर देखा बिलाव चूहे को लेकर निडर बैठा है। चूहे का सिर एक तरफ लटक गया है। उसकी गर्दन पर एक पंजा है। विप्लव समझ गया, कुछ ही क्षणों में भक्षण शुरू हो जायेगा। तुरन्त लाठी उठाकर बिलाव के पीठ पर जमाते ही, अचानक आक्रमण से घबड़ाया हुआ बिलाव एक छलाँग में भाग गया। चूहा पहले अधमरा-सा पड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे आँगन की नाली में घुस गया। अब विप्लव की छाती आत्मसंतोष से भर उठी। उसे मन-ही-मन बहुत अच्छा लगा। विप्लव अब बत्ती बुझाकर ऊपर चला गया। एक हाथ सीधा फैलाकर रेणु की छाती पर रखते ही रेणु ने अनायास निर्भयता से उसे जकड़ लिया। अनेक योजनों की परिक्रमा के बाद विप्लव ने देखा, उसे अनन्त शून्यता घेरे हुए है। वह निर्विकार आगे बढ़ता रहा। पर यह परिक्रमा अनन्त काल व्यापी है। यह गति अवरुद्ध नहीं करना चाहता है विप्लव। सहसा सुन पड़ा उसे कोई बुला रहा है। विप्लव ने पलटकर नहीं देखा। बढ़ते हुए बोला, 'आप कहिए, मैं सुन रहा हूँ।'

'दूर से तुम युवक जैसे ही लग रहे हो। लेकिन इस उम्र में तुम इस पथ पर कैसे?'

'इस पथ पर क्या खास उम्र के व्यक्ति ही यातायात करते हैं? मुझे मालूम नहीं था।'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है। इस पथ पर हमारी तरफ बूढ़े लोग ही आते हैं।'

विप्लव को लगा कि उसकी पीठ के पीछे से ही कंठ-स्वर बोल रहा है। 'तो मुझे आप क्या करने के लिये कहते हैं?'

विप्लव को लगा, वह आदमी हँस रहा है।

'आप क्यों हँस रहे हैं?'

'मैं सोच रहा हूँ इतनी कम उम्र में तुम इस पथ पर क्यों आये? अभी तुम्हारी ज्वार में बहने की उम्र खत्म नहीं हुई है।'

इस बार विप्लव हँसा।

'ज्वार किसे कहते हैं, मैं नहीं जानता।'

'क्या कहते हो! तुम्हारी बात नये ढंग की है।'

'ऐसी बात है क्या? शायद आप ठीक कहते हैं।

'वैसे यह पथ समाज-व्यवस्था में आस्थाहीन, दिल जले आदमी का पथ है। तथाकथित ईश्वर-निर्दिष्ट नियम तोड़ने वालों का पथ है। क्या तुम यह बात जानते हो?'

'नहीं, मैं नहीं जानता।'

विप्लव को इस क्षण महसूस हुआ कि कंठ-स्वर बहुत परिचित है। पीछे घूमकर देखने की इच्छा होने पर भी नहीं देखा।

'देखो विप्लव, मैं खुद जानता हूँ कि यह धरती समय के हाथ का खिलौना बन गयी है। क्या तुम यह मानते हो कि यह धरती ध्वंस हो जायेगी?

विप्लव ने इस बार ज्यादा ध्यान नहीं दिया।

'क्यों' कहते नहीं?'

'क्या कहूँ? मैं किसी चीज पर विश्वास नहीं करता।'

'ऐसा मत कहो, ईश्वर तुम्हारा न्याय करेंगे।'

विप्लव जोर से हँस पड़ा।

'क्या अब भी ईश्वर के न्याय का समय नहीं हुआ है तीनकौड़ी बाबू?'

'तुम मुझे पहचान गये हो? तुमने आज जिस बिलाव को मारा है वही ईश्वर है।'

विप्लव फिर हँसा। निर्जन प्रांतर में हँसी चारों ओर लहरों की तरह बिखर गई। पश्चिमी आकाश पर घन-घटा छाई है। घनघोर काली घटायें। आसन्न-विपत्ति का आभास। विप्लव रुकता नहीं है। पश्चिमी क्षितिज पर लाल मिट्टी लिपी हुई है। आँधी की सूचना। झोंकों के साथ हवा चलने लगी। विप्लव तब भी नहीं रुका। परिक्रमा का अन्त नहीं है। साँय-साँय करती हवा से आकाश पर धूल छा गई। झड़ीदार बरसात शुरू हुई। विप्लव निर्विकार है। सारा शरीर भींग गया। और तेज हवा के झोंकों के कारण उसे अपने लक्ष्य-पथ का ख्याल नहीं रहा। दिशा भूल गया। वर्षा की अजस्र धाराओं में दिग्वलय डूब गया। विप्लव ने खाई-खंदक, जंगल-मैदान कुछ न माना। ठोकर लगने पर गिरकर उठ गया। वर्षा की बूंदें शरीर में सूई जैसी लग रही है। विप्लव ध्यान नहीं देता। वह बढ़ता है। ऐसे विपत्ति के व्यूह में चक्कर

काटने के बाद विप्लव मिट्टी पर गिर गया। होश आने पर लगा कि वह एक धान के खेत में पड़ा हुआ है। प्रकृति पर छाई हुई भयावह नीरवता। उठने की चेष्टा करने पर मालूम हुआ कि हाथ-पैर बँधे हुए हैं। बड़े आनन्द के साथ वह लेट गया। याद आया, तीनकौड़ी बाबू ने कहा है, 'ईश्वर तुम्हारा न्याय करेंगे।' विप्लव कमजोर स्वर में बोला, 'तुम्हारा न्याय मैं नहीं मानता।'

'इससे कुछ आता-जाता नहीं है। इससे तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं होती है। तुम्हारे लिए विनाश ही एकमात्र पथ है।

विप्लव ने देखा, मैदान में विशाल आकार में वह बिलाव उसके सामने खड़ा है।

'मुझे पहचानते हो?'

'नहीं, तुम लोगों को अलग करके पहचानना बहुत मुश्किल है। पर वैसे तुम एक बाघ जैसे लग रहे हो।'

'तुम एकदम मूर्ख हो, नहीं तो बे सर-पैर की क्यों हांकते?'

विप्लव ने उत्ताल अट्टहास से प्रान्तर की नीरवता को तोड़ देना चाहा। पर पस्त शरीर में थोड़ी सी शक्ति नहीं थी।

'अब मैं बदला लूंगा। मेरे लिए तुम और चूहा दोनों बराबर हो। और मैं तुमसे सौ गुना शक्तिशाली हूँ।'

'मैं बिना संग्राम के पराजय नहीं स्वीकार करूँगा।'

बिलाव ने अपना एक पंजा विप्लव की छाती पर धँसा दिया। पसलियां चरमरा उठीं। वह सांस नहीं ले सकता है। छटपटाता है।

'क्या स्वीकार करते हो कि मैं सर्वशक्तिमान हूँ?'

विप्लव की आंखें बाहर लटकने जैसी हैं। पर तब भी अन्तिम बार शरीर की सारी शक्ति इकट्ठी करके बोला, 'नहीं, मैं स्वीकार नहीं करता।' कहने के साथ ही ठंढी हवा की एक लहर उसकी छाती के भीतर पहुँची। बड़ी शान्ति से साँस लेने के बाद उसने आंख खोलकर देखा, बिलाव एक क्रूर मुस्कान मुस्करा रहा है। और कह रहा है, 'मैं तुम्हें बीस वर्ष तक क्लीव बनाकर जीवित रखूंगा। और एक-एक करके तुम्हारी सब सन्तानें छीन लूंगा।' विप्लव ने स्वीकार नहीं किया। वह सिर्फ मर्मान्तिक अवसाद से टूट गया। कुछेक शब्द उसके मुँह से निकले।

'मैं जानता हूँ, इससे अधिक कुछ करने की क्षमता नहीं है तुममें।'

नींद टूटने पर देखा, झिमली उसके गले से लिपटकर कह रही है, 'बाबी उठो, दिन चढ़ गया है।' विप्लव ने झिमली को पास खींचकर चूम लिया।

'अच्छा बापी, तुम सोते-सोते किससे बात कर रहे थे?'

विप्लव मीठी मुस्कान मुस्कराया। बोला, 'ओ, एक डकैत आया था। मेरे साथ बहुत देर तक युद्ध हुआ। फिर वह हार गया। पर मैंने उसे नहीं मारा। खूब डाट-डपटकर भगा दिया।'

झिमली ने फिर तुरन्त दोनों हाथों से गले को जकड़ लिया। बोली, 'डाकू को भगाकर तुमने अच्छा किया। तुम बड़े साहसी हो बापी। तभी तो मुझे बिल्कुल डर नहीं लगता।

सम्पर्क—
संचालक, भाषांतर केन्द्र
आरामबाटी,
खड़गपुर–४ [प० बंगाल]

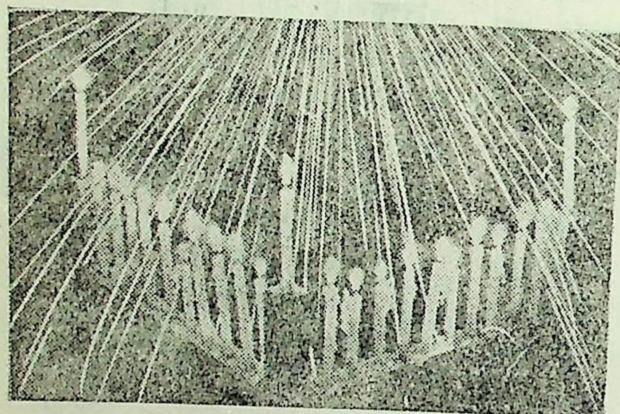
एक बार शैलेश भटियानी 'विकल्प' पत्रिका के लिये विज्ञापन जुटाने गोरखपुर गये। वहाँ उनकी भेंट 'सम्भावना' के संपादक श्री माधव मधुकर से हुई। यह दोनों की पहली मुलाकात थी।

माधव मधुकर ने एक नजर इनके स्थूल शरीर पर डालते हुये उनके हाथ में थमे हुये बैग की तरफ संकेत करते हुये कहा, 'भटियानी जी! माफ कीजियेगा, अपने आकार-प्रकार और इस बिजनेस बैग से साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक के जगह किसी कम्पनी के एजेन्ट ज्यादा मालूम पड़ते हैं।'

शैलेश भटियानी ने कहा—'आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि मैं अपने इस बैग की वजह से किसी कम्पनी का एजेन्ट लग सकता हूँ और आप अपने सम्पादक से।

अमर गोस्वामी

व्यंग्य



ओलम्पिक और हाकीयान

हमने इस बार फिर कांस्य पदक जीत लिया है! हमने ही ओलम्पिक हाकी में एशिया का स्वर्ण ध्वज फहराया था, जिसे पकिस्तान ने ४४ वर्ष बाद म्युनिख में योरोप को सौंप दिया—सीकिया की आंखों में अभी भी आँसू। मैं पिघला। पूछा उससे, "गोल्ड मेडिल का वजन और आकार कितना होता है बंधु?" वह चुप। खुसुर- पुसुर करके सबसे पूछता है। लोग मुस्कुराते हैं। कोई उत्तर नहीं देता। सोच भर रहे हैं। मैं दार्शनिक बन गया—मित्र हम सब मायावादी है। मृग के समान कस्तूरी को ढूंढते फिर रहे हैं। अन्दर के भगवान को भूलकर उसे बाहर खोजते फिर रहे हैं। यही हाल ओलम्पिक का है। एक के एक खिलाड़ी इस देश में हैं। पर हम अपनी आशाएं उन पर टिका देते हैं, जो विदेश जाते हैं। विदेश जाने वाले के प्रति अभी भी हमारा भ्रम कम नहीं हो पा रहा है। इसी कारण उनसे अच्छे कई खिलाड़ियों को हम हिकारत की नजर से देखते हैं, क्योंकि उनके पास 'पासपोर्ट' नहीं हैं।

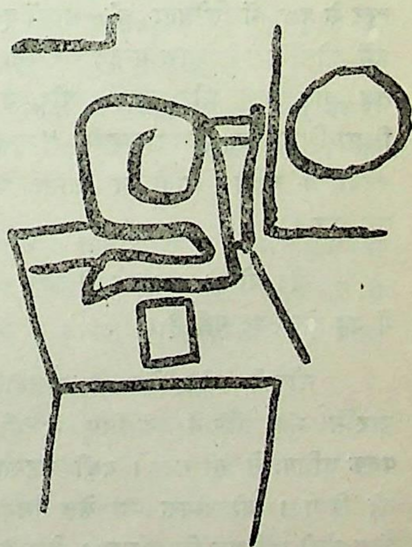
सींकिया नहीं मानता। उसकी उदासी लगभग ज्यों-की-त्यों। मैं हैरान हार के पक्ष में मेरे पास एक लेख था, प्रश्न था। अच्छा तो जिसे देखा नहीं उसके लिए हैरान क्यों? देखा है स्वर्ण पदक कभी? जिसे देखा नहीं उसके लिए मन में तनाव क्यों जो देख रहे हो, उसके प्रति अनादर क्यों……। जो भी कुछ हमने शुरू किया दूसरे उसके पारंगत बन गये और हमने अपने पुराने गौरव के ढोल पीटे। ज्ञान के क्षेत्र में, तकनीक के क्षेत्र में व विज्ञान के क्षेत्र में। और अब जब हमने हाकी जीतकर सोने का तमगा दूसरों के हाथ में सौंप दिया तब बौखला रहे हैं।

बौद्ध धर्म जन्मा भारत में पनपा कहीं और। संस्कृत के ग्रंथ लिखे गये हमारे यहाँ, खोज का काम कहीं और हुआ। हम जाते हैं अपने गाँव सिमरिया, रास्ता पूंछते हैं विदेशिया से।… अच्छा हुआ गिल्ली-डंडा हम देश के बाहर नहीं ले गये।

अनादि मिश्र

नहीं तो उसका भी शतरंज जैसा हाल होता। और कांस्य पदक तक लाना दूभर हो जाता।

ज्योतिष विद्या भारत की महान देन है विश्व को। उसी की अनदेखी ने हमें हराया। हाकी के तमगे के लिए कितने सारे लोग विदेश यात्रा पर जाते हैं। क्यों नहीं मुझे भी भेजा जा सकता था। मैंने अभी-अभी ज्योतिष विद्या सीखी है। ऐसा मुहूर्त निकालता कि आप-से-आप गेंद राकेट की नाईं खिची हुई गोल के अंदर होती और खिलाड़ी दर्शक होते!



हाकी के मामले दुर्भाग्य बराबर हमारे पीछे पड़ा हुआ है। उसे जन्तर-मन्तर से बाँधना होगा। अभ्यास और भाग्य का ३६ का आंकड़ा होता है

हवाई जहाज से दर्जनों लोगों को भेज देने से भाग्य पर कोई असर नहीं पड़ता। साथ में एक ज्योतिषी भी जाना चाहिए।

पिछले आठ वर्ष से हाकी और उससे पहले क्रिकेट, यही मेरे जीवन का प्रतीक बन गया है। पर 'संतोषी सदा सुखी'। कहकर चुप रहता हूँ। और अब तो मानसिक तनाव से दिल की बिमारी हो जाती है। अतः मेरे सोचने का ढंग ही दूसरा हो गया है।

पहले हम जीतते थे और फिर जीतते थे। बड़ी खुशी मनाई जाती थी। अब हार रहे हैं, तब क्यों नहीं इस हार के दोहराए जाने का सुख प्राप्त करते। भले ही खेल के मैदान में हमने बाजी हार दी है, लेकिन खेल की भावना के प्रदर्शन में तो हमने सबको पीछे छोड़ दिया है। यदि इसका कोई स्वर्ण पदक होता तो हम अपनी हार को भी जीत की भावना से स्वीकार करते। पर मैं तो बिना उसके भी वैसा ही कर रहा हूँ।...

ओलम्पिक मैच शुरू होने से पहले वक्तव्यों को अखबारों में पढ़ने से ऐसा लगने लगा था कि इस बार स्वर्ण मुद्रा के साथ-साथ देश की रोजगारी की समस्या भी सुलझ जायेगी। पर अब सोचता हूँ कांसे के एक पदक से क्या होगा। पर रेजगारी समस्या को हम खेल से क्यों जोड़ें। खेल अलग बात है। मैं फिर से हार के पक्ष में सोचता हूँ---अरबों द्वारा इसराइलियों के अपहरण के दिन ही हमें ओलम्पिक से 'वाक आउट कर देना चाहिए था या ओलम्पिक ही बंद हो जाते। तब बात कुछ और होती और यदि खेल चलते भी रहते तो विजेता को खिझा-खिझा कर दुनिया कहती, "बच्चू भारत की टीम" वाक आउट, कर गई। वरना न चाँदी आती न कांसा और न सोना। कुछ हाथ नहीं आता इस बार।...

खैर जो हो गया सो हो गया, होने को कौन टाल सकता है। खेल तक में यह होनी डट गई है।

नौकरी और खेल में राजनीति लाना ठीक नहीं। अन्यथा हाकी की हार से मुँह छिपाने के लिए मैं भी मुखौटा लगाकर कहता---लो हाकी का पदक एशिया से ही गया। बड़ी मेहनत से हम लाये थे और पाकिस्तान ने उसे खो दिया। ओलम्पिक का खेल लड़ाई से त्रस्त राज्यों के बीच सद्भावना के लिए योरोप में शुरू किया गया। खेल के मैदान में खून के प्यासे दुश्मन पानी देकर

एक-दूसरे की प्यास बुझाने लगे । वहाँ अब शांति है। और अशांति, वह भागकर एशिया में शरणार्थी बन गई है। अगला ओलम्पिक मानट्रियल में होगा। एशिया में जाने फिर कब हो।...मुझे नींद आ गई।

सपना !!! भारत के गले में सोने का हार। मेरा भाषण—भाइयो, लोग तो कहने लगे थे कि हमारी नई परम्परा बन गई है। ऐसे लोग देश के दुश्मन हैं। वे उनके भी विरोधी हैं जो हाकी की गेंद के चकों वाले 'हाकी-विमान' पर बैठकर विदेश की यात्रा को जाते हैं। आलोचक कहते थे पहले केवल हाकी की टीम भेजी जाये। जब वह जीत जाये, तब स्वागत के लिए दूसरे लोग और सबसे बाद में प्रबन्धक अधिकारीगण और चयन समिति के लोग। लेकिन अब देख लिया आपने कि हम अपनी ही टीम से जीतकर आये हैं। हम खेलने के लिए ही नहीं, जीतने के लिए भी जाते हैं। हम केवल पर्यटन के लिए ओलम्पिक नहीं जाते। हमारे बहादुर खिलाड़ी दाल-रोटी के बल पर हाकी के मोर्चे से जीतकर लौटे हैं। हमारे खिलाड़ियों को न शिक्षा की परवाह है, न पौष्टिक आहार की चिंता और न ही नौकरी की फिक्र। हर क्षेत्र में वे खिलाड़ी हैं। वह तो हम चाहते नहीं, वरना प्रयोग के तौर पर सूखी रोटी, नमक और मिर्च के बल पर भी स्वर्ण पदक प्राप्त करके दिखा सकते हैं। हमारे किसान मेहनती हैं और मजदूर हृष्ट-पुष्ठ।

लोग कहते हैं हमारा एक पहलवान 'रणछोर' बन गया म्युनिख में। उसने ठीक किया। हारना या भागना बुरा नहीं। विकास की भावना बनाये रखने के लिए किसी-न-किसी क्षेत्र में हारते रहना जरूरी है। इससे एकता की भावना भी पैदा होती है और हाकी की गेंद तो अब एशिया की एकता तक के लिए जरूरी हो गई है। इससे इस बार अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव पैदा हुआ है। इसका श्रेय हार को ही जाता है।

टोली में 'पदक- योग' तक में हम हारे हैं। आबादी अलग चीज है, तमगा अलग। इन्हें एक साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। बीच-बीच में जोर-जोर से तालियां बज रही थीं। मुझे लगा मेरे भाषण के कारण ही भारत जीता। वरना खेलना किसे आता है !!!

मेरी नींद टूटी। सामने अखबार। अखबार में भारत की हार। सोना गया ! दिल कुछ उचाट ! फिर तीसरे दिन का समाचार लम्बी लाइन। 'भारत इस बार फिर कांस्य पदक विजेता।' मुँह कड़ुवा-कसैला हो जाता, लेकिन दौड़कर जल्दी से मैंने बिटिया की टॉफी खा ली, बिटिया हँस पड़ी। सोचा खेल की भावना के मामले

में हमसे कोई नहीं जीत सकता। जीवन के हर क्षेत्र में हार कर भी विजय का भाव प्रदर्शित करने में जब हम पूरी तरह से पारंगत हो गये हैं।......

और विश्वास रखिये यदि अगले ओलम्पिक के बारे में मेरे कुछ खेल प्रकाशित होते रहे तो भारत अवश्य जीतेगा। तब तक यही कि आज के जमाने में किसका राज चलता है इतने दिनों तक! एकाधिकार तो किसी का नहीं चलता और अब खेल भी नहीं। हमें आशा रखनी चाहिये। अपने देश में होनहार खिलाड़ियों की कमी नहीं, प्रशिक्षकों की कमी नहीं और श्रेष्ठ आयोजक और चुनाव कर्ताओं की कमी नहीं है। हमें इन पर नाज और भरोसा रखना चाहिये, ताकि अगले ओलम्पिक में इस बार से भी ज्यादा लोग हाकी के नाम पर 'विशेष भ्रमण' पर जा सकें। उनके साथ एक व्यंग्यकार भी जाना चाहिये जिसका नाम स्वाभाविक है कि 'श्री अनादि मिश्र' ही होना चाहिये, क्योंकि प्रस्ताव मैंने ही रखा है। और यदि तब भी हम हारे तो लौटकर व्यंग्य से मैं सन्यास ले लूंगा।

आशा है कि मुझसे अच्छे व्यंग्यकार भाई टांग नहीं लड़ायेंगे। एक बार तो विदेश हो आने दो भाई। (फिर विदेश पलट व्यंग्यकार तो कहलाऊंगा भले ही हार कर लौटें।) व्यंग्य का खेल से क्या लेना-देना।

———

पटना युवा-साहित्यकार सम्मेलन से लौटने पर श्री वीरेन डंगवाल श्री इलाचन्द्र जोशी से मिलने उनके घर पहुँचे। श्री जोशी ने उनसे पटना सम्मेलन के बारे में जिज्ञासा की।

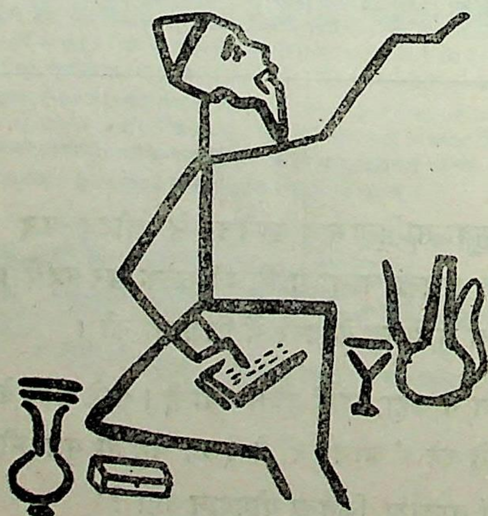
डंगवाल ने कहा, 'वहाँ होता क्या है। सारे लोग बेवकूफ थे, बेवकूफी करते रहे।' जोशी जी ने पूछा, 'यह तो मुझे भी पता है, लेकिन उसमें तुम्हारा कितना योगदान रहा?'

उर्दू कहानी

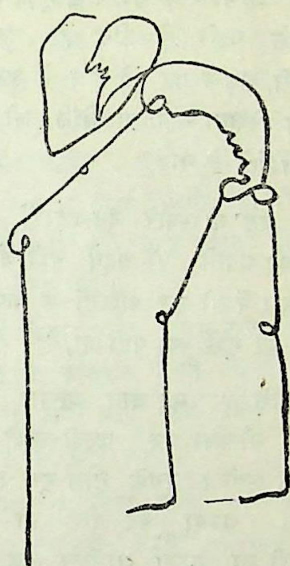
प्यास और प्यास

खदीजा मस्तूर

घेरदार मैला चीकट बुर्का सपड़-सपड़ करती वह अपनी माँ के पीछे चली आ रही थी। सारे रास्ते ठोकरें खाईं। जरा कदमों की तरफ देखकर चलती तो भला अँगूठा जख्मी होता। छोटे-बड़े घरों की बेशुमार आंखें बाजार में आ जा रही थीं। फिर भी वह देख-देख कर न थकती। अँगूठा कम्बख्त टूटते-टूटते बचा। अम्मा के ख्याल से उफ तक न की। वह उल्टा डाटती कि अल्लाह ने मुँह पर आंखें नहीं दीं अब उसकी अम्मा को कौन समझाता कि अल्लाह ने मुँह पर आंखें देकर ही तो गजब ढ़ा दिया है। इन आंखों



ने ही तो उसे जन्म-जन्म का नदीदा बना दिया है । जब जरा मुटर-मुटर चलना सीखा तो, तब बाहर पीपल के पेड़ तले जा बैठती । बनैनिया-ठकुराइनियाँ लँहगे और साड़ियाँ पहने लम्बे-लम्बे घूंघट निकाले छम-छम करती बाहर निकलती तो वह उन्हें टुकर-टुकर देखा करती । होली, दिवाली, ईद बकराईद को बच्चे भड़कते हुए कपड़े पहनकर इतराते फिरते । उसे ईद पर नये कपड़े तो मिल जाते, मगर वही गाढ़े का जोड़ा, ऊपर से छोटी सी मलमल की लाल दुपटिया । सात-आठ साल की हुई तो हठीली बन गई । एक दिन हठ करने लगी, हम तो 'दिल की प्यास' का जोड़ा पहनेंगे । अम्मा ने लाख-समझाया बुझाया मगर वह मचलती ही रही अन्त में उसकी पिटाई हुई कि बाबा तो सारे दिन में मुश्किल से रुपया-बारह आने कमाता है और बेटी को दिल की प्यास बुझानी है। एक रुपए में दुनिया भर के टंटे करने होते । उसी में दहेज और शादी के लिए जमा करना पड़ता । अल्लाह ने एक औलाद भी दी तो बेटी । कभी-कभी तो अम्मा कलेजा फाड़कर रोतीं । लेकिन उसे इन बातों की कब परवाह होती थी हर आठवें दसवें दिन वह बिफर जातीं हम तो 'आंख का नशा' की कमीज पहनेंगे ।' कमीज तो उसे न मिलती,



हां कुछ दिन के लिए आंख का नशा आँसुओं में जरूर बह जाता ।

झुककर देखा तो अँगूठे से खून बह रहा था । दर्द की एक टीस उठी । उसके जी में आया कि वहीं जमीन पर बैठ जायँ । अब वह भरे बाजार से तो निकल ही आई थी और कोठरी बस दो-चार कदम ही रह गई थी । सामने से दो औरतें लहलहाते कपड़े उड़ाती बाजार की ओर जा रही थी । उसने नकाब उलट कर उधर देखा । औरतें तो निकली चली गईं लेकिन सामने खोखे में बैठे हुए पनवारी ने उसे देखकर खँखारा । क्या पता सुबह से बेचारे की बोहनी न हुई होगी ।

अम्मा घबराकर पीछे मुड़ीं । नकाब इससे पहले ही ठीक हो चुका था 'अरी, सड़क पर तो होश से चला कर, क्या दिखता नहीं जाली से, जो नकाब उठा देती है ।

वह धीरे-धीरे बड़-बड़ाई, कम्बख्त इसकी अपनी माँ बहनें नहीं जो उन्हें ताके । मैं तो उन औरतों के कपड़े देख रही थी मुझे क्या पता था,

कि······ मर जाय अल्लाह करे ।' वह बौखला कर जल्दी-जल्दी कदम उठाने लगी । उसके होश गुम हो रहे थे । अम्मा को पीछे ही छोड़ कोठरी का ताला खोलकर वह अन्दर घुस गई ।

बुर्का उतार कर उसने पलंग पर फेंक दिया । 'लो भला क्या कहेंगी अम्मा भी, अपने मुहल्ले में तो नकाब नहीं उठानी चाहिए थी ।' वह मारे शर्म के अँगूठे का दर्द भूल गई और चूल्हे के पास बैठ कर उपले तोड़ने लगी । इतने में अम्मा आ गई । वह अब तक बड़बड़ा रही थी—'अरे तुझे भी मिल जायेंगे रेशमी कपड़े, भला कुँवारी लड़कियों के लिए ऐसे शौक किसने बनाये ? गरीबों के लिए इज्जत ही रेशमी कपड़ा है ।'

अम्मा ने रोटियों की पोटली और ऐल्मूनियम का छोटा सा डिब्बा बगल से निकालकर चूल्हे के पास पटक दिया । वह अब भी सिर झुकाये आग फूंक थी ।

कोई हया-शर्म न रही, सड़कों उचकती फिरती हैं । इनसे इनके मर्द नहीं जो सौदा सुलफ ला तबाह कर रही हैं शरीफों की बे को' अम्मा की जबान रुकती ही न 'जाने कब आयेंगे वे लोग खत पर। आ रहे हैं कि आज आते हैं और क आ जायें तो दो बोल पढ़ा कर छु करूँ । मुझ बेवा के पास क्या रक्खा जिसके लिए तैयारियाँ करनी हैं रात दिन मेहनत करके बेगम साहब पास सौ रुपए जमा कराये हैं, बस उ से दो जोड़ बन जायेंगे, अपने जो भी खाये पहने । वह आग के साम सीढ़ी पर बैठ गई और दोनों हाथों सिर थाम लिया ।

अब उसे भी गुस्सा आ रहा था 'जरा सी नकाब उलट दी तो क्या गया ।' लाज ने चुपके से बगावत कर दी 'कभी अच्छा कपड़ा पहना नहीं आंख से भी न देखूं ? साल में ए जोड़ा मिलता है, वह भी मोटा-झोटा जाड़े में ऐसीं जुयें पड़ती हैं कि खुजा खुजाकर जख्म पड़ गये । बस बड़े आ वे लोग, अब लड़की जुरेगी नहीं, जो मुझे यह कप देने आयेंगे ।'

'अरी सालन भी गर्म कर दिया यूँ ही सिर गड़ाये बैठी रहेगी ।' अम्मा

ा गुस्सा अब कुछ कम हो गया ा।

'घी एक बूंद भी कहाँ है जो ख्वाम-ाह गर्म करके खाऊं, मनों घी जमा ड़ा है न...... !' ताक से मिट्टी की ंडी उतार कर नीचे रखती हुई वह ोली।

'लो अम्मा मर गई मेहनत कर रके और तेरे भौंह तले भी न आया। ब किधर से लाऊँ घी के पीपे।' अम्मा ूटकर रो पड़ीं।

बस जरा सी बात हुई और रो पड़ीं।, वह पिघल कर माँ की तरफ ढ़ी 'बड़ा थकती हो काम-कर करके ौर गुस्सा निकालती हैं मुझ पर। मैं ो कहती हूं—तुम घर पर आराम करो। मैं कर लूंगी नौकरी।'

'हाँ मैं तुझे भेजूंगी नौकरी करने, देखे नहीं दुनियाँ के रंग! आज तो तूने ाथ जाने की जिद की, अगली दफा ाम भी लिया बाहर निकलने का तो मैं डूब मरूंगी।'

'अच्छा, अब रोटी तो खा लो।' वह हंसने लगी।

'हाय तेरे अब्बा कहा करते थे कि अपनी बेटी को पन्द्रहवीं साल में ब्याह दूंगा। उनकी रूह कैसी बेचैन होगी।' अम्मा ने लम्बी आह भरी। उसे भी अपने अब्बा याद आ गये थे। उन्होंने सिर्फ एक बार उसे मारा था, वह भी चोरी करने पर, बात भी तो बुरी थी—ठाकुर साहब की लड़की का दुपट्टा न चुराती तो भला अब्बा उस पर हाथ उठाते। कैसा नर्म-नर्म दुपट्टा था। वह उस समय खुशी-खुशी दुपट्टा ओढ़े, लम्बा सा घूंघट निकाले बैठी थी। अम्मा ने किस बुरी तरह दुपट्टा सिर से झपट लिया था।

गर्म किया हुआ सालन तामचीनी की प्लेट में डालकर उसने अम्मा के सामने रख दिया और फिर दोनों बड़ी खामोशी से खाने लगीं।

अम्मा बार-बार लम्बी साँसें भर रही थीं। शायद उन्हें बंटवारे से पहले के दिन याद आ रहे थे, जब उनका शौहर जिन्दा था और उनका अपना एक छोटा सा घर था। उस घर में वह हाथ भर-भर कर चाँदी की चूड़ियाँ पहनती थीं। पैरों में घुंघरुओं वाले पाजेब बजते और सोने के लम्बे-लम्बे बुन्दे गालों पर झूलते थे। मोटा-झोटा पहन कर खुश थी, किसी की चाकरी तो न करती थी। शाम को मियाँ कुछ न कुछ हाथ पर ला धरता। एक बेटा न होने और बेटी की शादी रचाने के सिवाय कोई फिक्र सताने वाली न थी। बेटी की मँगनी भी खाते-पीते घराने में कर दी थी और जब से वह पैदा हुई थी बस उसी समय से दहेज के नाम पर दो चार आने रोज़ गुल्लक में छोड़ देती।

लड़की के सयानी होने तक अच्छी खासी रकम जमा हो गई थी……शादी को एक साल बाकी रह गया था, तभी देश का बंटवारा हुआ और जिसका जिधर मुँह उठा, भाग खड़ा हुआ। वे भी घर-बार छोड़कर एक काफिले के साथ हो लिए। मिट्टी की भारी गुल्लक और गहने की पोटली बगल में दाबे-दाबे, राह में वह मुसीबतें उन्होंने झेलीं कि जान पर बन आयी। कैम्प तक पहुंचे तो हैजे ने लूट लिया। शौहर के इलाज और फिर कफन-दफन पर गुल्लक का एक-एक पैसा झड़ गया। कुछ दिन बाद जेवर भी साथ छोड़ गये। उस समय से जीवन बिताने के लिए कैसे-कैसे जतन कर रही थीं। इस पर बेटी की जवानी की सिल सीने पर धरी थी। इस बोझ से तो बस कलेजा मुँह को आया जाता है।

खाना खत्म हो गया। जूठे बर्तन समेट कर वह धोने के लिए बैठ गई और अम्मा बुर्का सिर पर डाल कर फिर अपने काम पर चली गईं। चाय बनाने का समय हो रहा था। आज तो वह बेटी को घर छोड़ने की वजह से दोपहर में आ गई थीं वर्ना सुबह की, गई शाम को वापस आती थी। वह दिन भर अकेली पड़ी-पड़ी उकता जाती। कई बार घबरा कर कोठरी के दरवाजे के पास जा बैठती और टाट के पर्दे को ज़रा सरका कर बाहर झांकने लगती। औरतें बाजार में आती जा[ती] दिखाई पड़तीं। वह बैठे-बैठे उन[के] मनमोहक लिबास देखती और उन[की] कीमत का अन्दाजा लगाती रहती। उसे तो उन कपड़ों के नाम भी मालू[म] न थे। अल्लाह जाने उसे तो बस [दो] ही नाम याद आते थे—'आँख का नशा' और 'दिल की प्यास।'

अम्मा के जाने के बाद वह टा[ट] के पर्दे से जा लगी। फिर यों ही ज[रा] गर्दन उचका कर उसने बाहर झांका। सड़क के उस पार पनवाड़ी खाली बै[ठा] कोई किताब पढ़ रहा था—'कमबख्त।' उसने जल्दी से गर्दन अन्दर कर ली और फिर लिबासों की रंगीनियों [में] डूब गई।

शाम को अम्मा जरा जल्दी [आ] गयी। उन्होंने आते ही बुर्का खूंटी पर लटका दिया। रोटियों की पोटली और दाल का डिब्बा चूल्हे के पास रख कर उसे अजीब-सी नजरों से देखने लगीं। वह उठकर आग जलाने लगी। अम्मा ने दिया जला कर ताक पर रख दिया और फिर स्वयं भी चूल्हे के पास बै[ठ] गईं।

'अंधेरे में क्यों बैठी थी, दरवाज[ा] तो बन्द रखा कर।'

किसी की हिम्मत अन्दर आ[ने] की?' मारे धुंवे के उसकी आंखों [में] आँसू आ रहे थे।

ऐसे ही कह रही हूँ। जमाना खराब है।'

'हूँ।······आज तो बेगम साहब ने बड़ी जल्दी छुट्टी दे दी।'

'तबियत खराब हो रही थी। वह दोनों हाथों से टांगें दबाने लगीं। खाना गर्म करके दोनों खाने बैठ गईं। बाहर आज ठंडी हवा चल रही थी। कहीं-कहीं बादल के टुकड़े उड़ रहे थे। रोशनदान से हल्की-हल्की हवा के झोंके अन्दर तक आ रहे थे और दिये की लौ बार-बार कांप जाती थी।

खाना खाकर अम्मा अपने बिस्तर में दुबक गई। वह देर तक चूल्हे के पास बैठी आग कुरेदती रही।

'शायद रात में बारिश हो।' उसने अम्मा को देखे बिना कहा।

'हूँ।' अम्मा ने जल्दी से आँसू पोंछकर लिहाफ में मुँह छिपा लिया' 'अब तुम भी सो रहो।'

वह उठ खड़ी हुई। बिस्तर पर जाने से पहले किवाड़ खोलकर उसने बाहर झांका। 'ओह कैसे बादल छाये हुए हैं।' पनवारी की दूकान की ओर उसने देखा सारी दूकानें बन्द थीं मगर वह ठाठ से बैठा गा रहा था—'आवाज दे कहाँ है'—···बादल धीरे-धीरे घुमड़ रहे थे। उसने जल्दी से दरवाजा बन्द कर लिया और अपने बिस्तर पर लेटकर खबर-खबर खुजाने लगी। जाने कब आंख लग गई और सपने में पनवाड़ी धम् से आ कूदा वह हड़बड़ा कर जाग पड़ी और फिर देर तक मां से लटपटाती रही।

सबेरे ही अम्मा चाय पीकर अपने काम पर चली गई। उसने बिस्तर तह किये। कोठरी झाड़ी, अपने लिए दो रोटियाँ सेंकी और फिर रोज की तरह टाट के पर्दे से लगा कर कपड़ों की बहार देखते-देखते जाने कैसे उसकी नजरें पनवाड़ी की दूकान से टकरा जातीं। वह सोचने लगी— उसके अपने मंगेतर के घर भैंस है, इससे अच्छी दूकान है। अल्लाह ने आज बुरा दिन दिखाया है तो क्या, सदा दिन एक से थोड़े ही रहेंगे। आज दूसरों के कपड़े ताकती है तो कल उसे भी ऐसे ही मिल जायेंगे। सच कहती हैं अम्मा, कहीं भरे बाजार भी नकाब उलटी जाती है।

दरवाजा बन्द करके वह अपने पलँग पर लेट गई—'इन कपड़ों के पीछे इज्जत खाक में मिला दी। कल से अम्मा से आँख मिला कर बात नहीं की। अब तो अगर दरवाजे पर भी जाऊँ तो लानत है।

बड़ी देर तक वह चुपचाप पड़ी पिंडलियाँ और कमर खुजलाती। जब कोई काम न हो तो कम्बख्त जुवें भी जोर-शोर से हमला शुरू कर देते हैं। वह उठकर कोठरी की दीवारें झाड़ने

लगी। दरवाजे के पास वाले हिस्से पर पहुँची तो जंजीर खोलकर तनिक बाहर झांकने लगी। औरतें और लड़कियों का पूरा गोल का गोल हँसता-बोलता जा रहा था। वह आँखें फाड़-फाड़कर उनके लिबास देखने लगी। झाड़ू हाथ से कब गिर गया, पता ही न चला।

बड़ी देर बाद वह जब दरवाजे से हटी तब लम्बी-लम्बी आहें भर रही थी। सारा जीवन यूं ही तरस-तरस कर गुजर गया। कोई यह भी जीना है। क्या पता भले दिन कब आयें। उसे अपने बचपन की एक घटना याद आ गई। उस दिन उसने खां साहब की लड़की की खुशामद करके कमीज पहन ली थी। कितने बड़े-बड़े फूल पड़े थे उस पर। उसी समय कम्बख्त खां साहब उधर में आ टपके और अपनी बेटी को सड़क पर नंग-धड़ंग उचकते देखकर उसका मुँह तमाचों से लाल कर दिया था। फिर अब्बा ने उसके आंसू पोंछे थे और छींट की एक कमीज बनवा दी थी। छींट की कमीज...उसकी आँखों में आंसू उग आये थे। कोई बात भी नहीं बारह बरस बाद घूरे के दिन भी पलट जाते हैं। वह झाड़ू उठा कर बड़ी तेजी से दीवारें रगड़ने लगी।......

बहुत दिन झूठ बोलने के बाद आज रात अम्मा ने हथियार डाल दिये।

'उन्होंने तो वहीं शादी कर ली। ख्वामख्वाह मुझे भुलावे में रक्खा...''

वह पल्लू से आँसू पोंछने लगी—''अब तक कहीं करके छुट्टी पा जाती। कोई कमी है लड़कों की......''

वह चुपचाप आग जलाती रही। उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। 'हर दूसरे-तीसरे दिन खत लिख देते थे कि आ रहें हैं। छः साल बैठे रहे इंतेजार में। बेगम साहब तो हजारों सुना रही थीं कि मैंने इंतेजार ही क्यों किया। अब मैं भी ऐसे तड़पड़ शादी रचाऊँगी कि उन्हें मुँह तोड़ जवाब मिल जाय।

अम्मा कनखियों से उसकी ओर देखकर रही थी और वह सिसक रही थी। पतीली में सालन सनसना रहा था।

''बेगम साहब ने तो आज ही से कहना शुरू कर दिया है। अब भला जिस बात में उनका हाथ हो, उसके क्या पूछने!''

उसने चोर नजरों से अम्मी की तरफ देखा। और धीरे-धीरे स्वयं को संयत किया। खाना प्लेटों में निकाल कर अम्मा के सामने रख दिया और खुद जबरदस्ती खाने लगी। अरे हाँ, कहीं वह यह न कहें कि उसे भी दुख हुआ है। कैसी शर्म की बात होगी।

रात को जब वह बिस्तर पर लेटी तब कोई उसका कलेजा नोचता रहा। ठंडी-ठंडी आहें पसलियों को तोड़ती

रहीं। बाहर तेज हवा चल रही थी। कोठरी के पिछवाड़े बने हुए सहन में पर्दे की चटाइयों से जोर-जोर की खड़-खड़ाहट हो रही थी। उसने रोना चाहा, मगर एक आँसू भी न बहा सकी। रात में देर तक वह सोचती रही— अब बेगम साहब कुछ अच्छा ही करेंगी। वह यहीं अपनी माँ के पास शहर में रहेगी। शहरी लोगों के पास पैसा भी तो ज्यादा होता है। अपने मियाँ के संग वह बन-ठन कर निकला करेगी। एक अच्छा सा काला बुर्का बनवा लेगी। चलो जो कुछ हुआ……

दिन गुजरते गये। टाट का पर्दा आँधी और बरसातों की मार खाते-खाते जर्जर हो गया। उसमें बड़े-बड़े सूराख हो गये थे। वह अब पर्दे को सरकाये बगैर सूराखों से बाहर झाँका करती। पनवाड़ी की दूकान पर यूँ ही उचटती सी नजर पड़ती तो मुँह फेर लेती। अम्मा हर आठवें दसवें दिन उसके रिश्ते की कोई चटपटी-सी बात कर डालतीं। वह भी इस तरह जैसे अपने आपसे कह रही हों—'बस हद है। बेगम साहब तो पसन्द ही नहीं करतीं। वह तो बस यही रट लगाती हैं कि जब तक लड़की ऐश न करे, वह भी कोई रिश्ता हुआ। और फिर करनी भी अपनी तरफ के लोगों में हैं। मैं तो लाख कहती हूँ कि पैसा-कौड़ी कुछ न देखो। बस दो बोल पढ़वा कर काम पूरा कर दो लेकिन वह काहे को मानेगी…

वह इस तरह काम में लगी रहती जैसे अम्मा की बात सुनी ही न हो। मुस्कुराहट छिपाने के लिए देर तक उनकी ओर मुँह न करती। इधर कुछ दिनों से अम्मा बुझी-बुझी दिखाई दे रही थीं। कोई चटपटी बात भी न की थीं। वह समझ गई कि अम्मा जुदाई के ख्याल से रंजीदा हैं। अम्मा के जाने के बाद वह सारा दिन टाट के पर्दे से लगी बैठी रहती। आज उसे पता चला कि उसकी अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं। हर बात गलत समझती है।

अम्मा कह रही थीं—"कैसी बुरी हो गई है यह दुनिया भी। जिसे देखो, यही पूछता है कि क्या-क्या मिलेगा। सलाम कराई में लड़के को साइकिल मिलेगी या नहीं…। और यह अपनी तरफ के लोग तो और बदनियत हो गये हैं। जो चार पैसा उधर छोड़ आये हैं उसका चौगुना वसूल करने पर तुले हैं। हमदर्दी तो उठ ही गई दुनिया से।' वह सिर पकड़ कर आहें भरने लगीं। यह तो सच्ची बात थी कि उन दिनों उन्होंने इधर-उधर के कई घरों में झाँका। लेकिन सब व्यर्थ। बेचारी बेगम को भला कब फुर्सत थी इन टंटों की।

अम्मा की इन बातों ने उसका कलेजा दहला दिया…अरे! वह तो पहले ही जानती थी कि कुछ भी न

होगा। बेगम साहब अपने ऐश में भला उसे कब याद रक्खेंगी। कभी अपना पुराना रेशमी जोड़ा तक भी न दिया पहनने को....।

उसने रात अम्मा के साथ खाना भी न खाया और यों ही बिस्तर पर आ गिरी। सारी रात बादल उमड़-घुमड़ कर तरसते रहे और उसका कलेजा जलता रहा।

रात की बारिश से टाट का पर्दा एक तरफ से फटकर लटक गया था। आज जब जब वह बड़ी उदासी से दुनिया की धमा-चौकड़ी देख रही थी सहसा अपनी पूरी गर्दन बाहर निकाल दी। फिर खड़े होकर पूरे जिस्म पर्दे से बाहर ढकेल दिया। पनवाड़ी उस समय ग्राहकों से फुर्सत पाकर गा रहा था। उसने बड़े जोर से खंखारा और फिर पाँच का नोट हाथ में लेकर हवा में लहराने लगा। वह जल्दी से अन्दर हो गई। पनवाड़ी के सिवाय उसे किसी ने भी तो नहीं देखा था। सड़क पर गुजरने वाले उसके अस्तित्व से बिल्कुल अनजान थे।

दरवाजे के पास से हटकर वह अभी खड़ी ही थी कि पनवाड़ी अपनी सफेद लुंगी लहराता उसके दरवाजे के पास से गुजरा। टाट के सूराखों से उसने अन्दर झाँका और फिर उसकी बलायें लेता हुआ चला गया। वह जैसे अपनी जगह पर जमकर रह गई। थोड़ी देर बाद बड़ी मुश्किल से वह आगे बढ़ी और दरवाजा बन्द करके साँकल लगा दी।

दूसरे दिन दरवाजा उसी समय खुला जब अम्मा घर में आ गईं। दो-तीन दिन दरवाजे बन्द रहने के बाद फिर खुल गये। वह टाट के पर्दे से लग कर बैठ गई। 'हूँ ? किसकी हिम्मत है अन्दर आने की।' वह पर्दे की ओट से बाहर झांकने लगी। 'क्या देख रही हो तुम, हमें क्यों इतना तड़पाती हो?' टाँग खुजाता पनवाड़ी उसके सिर पर खड़ा था।

वह बौखलाकर खड़ी हो गई—"मैं तुम्हें नहीं देखती, मैं तो कपड़े देख रही थी।' वह बड़ी-बड़ी मुश्किल से इतना ही बोल पाई।

'तुम भी पहनना ऐसे कपड़े, मैं लाकर दूँगा अपनी बुलबुल को।' पनवाड़ी ने अपनी बारीक मूँछों पर हाथ फेरते हुए कहा। उसने जल्दी से दरवाजा बन्द कर लिया और पलँग पर गिरकर उल्टी-सीधी साँसें लेने लगी। इस समय वह कुछ भी सोच नहीं पा रही थी।

शाम को जब अम्मा आईं तो उनसे आँखें मिलाते हुए वह कतराई।

दूसरे दिन उसने दरवाजा बन्द ही रक्खा। लेकिन दोपहर के समय जब दरवाजा खटका तो अम्मा के आने के ख्याल से वह खुश हो गई। उसने जल्दी

से सांकल खोल दी। पनवाड़ी लपक कर अन्दर आ गया। वह बोला, 'मेरी दिल-रुबा, चैन नहीं पड़ता, तुम्हें बगैर देखे तो···दूकानदारी नहीं हो पाती।' वह उसकी तरफ बढ़ा, उसे लगा कि वह अपनी जगह से हिल भी नहीं सकती। पनवाड़ी ने उसे अपने करीब खींच लिया।

मैंने तुम्हारे लिए बेहतरीन 'दिल की प्यास' का सूट सिलवाया है। दर्जी से कहा है की वह फटाफट सी दे।' वह उसे अपनी बाँहों में भर लेना चाहता था। तभी उसमें न जाने कहाँ से जान आ गई। वह अपने को छुड़ा कर अलग खड़ी हो गई।

'जाओ' नहीं तो मैं चीखूंगी।''

'नहीं-नहीं. अपने महबूब से ऐसा सुलूक नहीं करते···।' वह हँसा, "कल जोड़ा लेकर आऊँगा, फिर तो खश होगी ?' वह जल्दी से बाहर निकल गया।

दरवाजा बन्द करके वह जैसे बेहोश सी अपनी पलँग पर जा गिरी। उसके गले में प्यास के काँटे फूट रहे थे।·······

रात को सोते समय पनवाड़ी की बातें उसके कानों में गूंजती रही और 'दिल की प्यास' का जोड़ा उसके जिस्म पर फिसलता रहा।

सुबह अम्मा के जाने के बाद उसने सावधानी से दरवाजा बन्द कर लिया। जूठे बर्तन उसी तरह पड़े लुढ़क रहे थे। बिस्तर खुले पड़े थे। किसी काम में उसका मन न लग रहा था। उसने उठकर हाथ मुँह धोये कंघी की और आँखों में नोकदार काजल लगाया।

रह-रह कर वह यही सोच रही थी कि अगर इस समय वह 'दिल की प्यास' का जोड़ा पहन ले तो कैसा अच्छा लगे। वह देर तक यूँ ही विचारों में खोई रही। फिर एकायक वह उठ बैठी और उसने सांकल खोल दी। जरा गर्दन उचका कर उसने बाहर झांका। पनवाड़ी की दुकान पर कई ग्राहक खड़े थे। किवाड़ को यूँ ही भेड़ कर वह पीढ़ी पर जा बैठी।

दोपहर हुई तो अजीब सा सन्नाटा छा गया। बन्द किवाड़ धीरे से खुले, पनवाड़ी ने अन्दर आकर सांकल चढ़ा दी। वह अपने हाथ में एक पोटली लिए हुए था; हँसता हुआ उसके पास आ बैठा। पोटली खोलकर उसने 'दिल की प्यास' का नारंगी जोड़ा उसकी गोद में डाल दिया। एक क्षण को उसने पनवाड़ी की तरफ देखा और फिर कपड़े दोनों हाथों से दबोच कर अपना मुंह छिपा लिया।

"पहन कर तो दिखाओ, मेरी रानी।" वह उसके करीब खिसकता जा रहा था। प्यार जताता हुआ बोला, "जिन्दगी भर गुलाम रहूंगा।"

'अम्मा से कहो न।'

'वह तो कहूँगा, अभी तो न तड़पाओ ।' पनवाड़ी जोड़े की कीमत वसूल करना चाहता था ।

उसने खुद को छुड़ाना चाहा ।

'तुम्हें मुझसे प्यार नहीं है, लाओ कपड़े दो, मैं जाऊँ ।' उसने गुस्से में बड़बड़ाते हुए कपड़े की तरफ हाथ बढ़ाया, 'मुफ्त के ठाठ कौन कराये' 'मैं अम्मा से दाम लेकर तुम्हें भिजवा दूँगी ।' कपड़ों को उसने अपने सीने से लगा लिया। पनवाड़ी बड़े नखरे से मुस्कुराया ।

'यह तो सब बाद में होगा ।' पनवाड़ी उसकी तरफ झपटा । जोड़ा उसकी गोद से फिसल कर जमीन पर गिर गया ।....

पनवाड़ी के जाने के बाद मारे शर्म के वह थोड़ी देर तक रोती रही। फिर आँसू पोंछकर नये जोड़े को देखने लगी। बहुत ही नर्म और चांद की किरनों की तरह चमकता हुआ रेशम वह जैसे सब कुछ भूल गई और जल्दी-जल्दी जोड़ा पहनने लगी। कपड़े पहन कर उसने आइने में स्वयं को देखा तो लजा गई ।

शाम हो रही थी। उसने चौंक कर जल्दी से कपड़े बदले। अब उसे यह फिक्र लगी थी कि इन कपड़ों को कहां छिपाये। अगर अम्मा ने देख लिया तो—? काफी देर सोचने के बाद उसने कपड़ों को तह करके अपने बिस्तर के गद्दे तले छिपा दिया और जूठे बर्तन साफ करने बैठ गई ।

रात को जब अम्मा के साथ वह खाना खा रही थीं तो उन्होंने गौर से उसकी तरफ देखा ।

'क्या रो रही थी ?' अम्मा ने निवाला छोड़ कर पूछा और लम्बी-सी आह भरी ।

'नहीं तो ।'

''हूँ ।'' वह खाना छोड़कर अपने बिस्तर पर लेट गई और देर तक करवटें बदलती रही ।

यह रेशमी जोड़ा तो उसके दिल की धड़कन बन गया था। हर समय उसे डर लगा रहता कि कहीं कोई देख न ले। दोपहर के समय दरवाजा बन्द करके वह जब जोड़ा पहनती तो शर्म से उसका गला दबने लगता। इधर तो कई दिनों से वह टाट के पर्दे के पास भी न बैठी थी ।

धीरे-धीरे दिन गुजर रहे थे। उस सुबह अम्मा जब जा रही थीं तो उनको हलका-हलका बुखार था। जाते हुए कह गई थी कि दोपहर में छुट्टी लेकर आ जाऊंगी। उसे अम्मा की फिक्र लग रही थी, कहीं बुखार तेज न हो गया हो ।

राह देखते-देखते तीसरा पहर हो गया था। आज बहुत दिन बाद वह

घबरा कर पर्दे से बाहर झाँकने लगी, शायद दूर से आती हुई अम्मा दिखाई दे जायें। झाँकते हुए उसकी नजर दूकान की तरफ उठ गई। पनवाड़ी ग्राहकों से कुछ कह कर उसकी तरफ देखने लगा और फिर जोर से हँसा। उसके ग्राहक भी उसकी तरफ देख रहे थे। वह बौखला कर अन्दर हो गई।

दिया जले अम्मा आयीं तो उनसे लिपट कर वह फूट पड़ी, रोते-रोते उसकी सिसकियाँ बंध गईं।

'मुझे अपने साथ ले चला करो। बार-बार वह यही कह रही थी।

''आह री पगली, अब तुझे वहाँ कैसे ले जाया करूँ। वहाँ साहब का अर्दली रहता है, बेगम साहब उससे बात कर रही हैं। पचास रुपए पाता है और बोलता है तो अल्ला कसम मुँह से फूल झरते हैं, अम्मा उसकी तरफ से मुँह फेर कर मानो अपने आपसे कह रही थीं, 'सद के जाने को जी चाहता है। खुदा पक्की करा दे तो नियाज दिलवाऊँगी।' उसने अम्मा को खाली-खाली नजरों से देखा और फिर चूल्हे में आग जलाने बैठ गई।

पनवाड़ी के हंसने और लोगों से इशारे करने के बाद से फिर उसने जोड़ा न पहना। जब कभी फुर्सत होती तो उसे निकालती और यूँ ही देख कर रख देती।

आज जब दोपहर बिल्कुल सुनसान हो गई तो उसने गद्दे के नीचे से जोड़ा निकाला। कुछ देर तक उसे छूती रही और फिर जल्दी से पहन कर खड़ी हो गई। आइना देखते हुए उसका घूँघट लम्बा होता गया। फिर वह सिर झुका कर बैठ गई। फिर एकायक तेजी से उसने अपने कपड़े पहन लिए। जोड़े को कागज में लपेटते हुए उसके हाथ काँप रहे थे। खूँटी से बुर्का उतार कर ओढ़ा, फिर बाहर झाँका और बंडल को बगल में दबाकर जल्दी से सड़क पर गयी।

वह पनवाड़ी की दूकान पर चुपचाप खड़ी थी। वह उस समय खाली बैठा फिल्मी गीतों की किताब पढ़ रहा था।

'और जोड़ा चाहिए? नौ दो ग्यारह हो जाओ।' उसने नाक सिकोड़ी

'मैं तेरा जोड़ा देने आई हूँ।' उसने बंडल पान के तख्ते पर रख दिया।

'अरी मुझे क्या करना है।' अपनी तो जोरू भी नहीं, जो पहनेगी इसे ले जा पनवाड़ी बौखला सा गया।

'फिर इसे अपने मुँह पर मार ले। यह जोड़ा मेरे जिस्म को नहीं लगता।' वह रंज और गुस्से से रो पड़ी, लोगों में मेरा मजाक उड़ाता है।' वह तेजी

से मुड़ी और अपनी कोठरी की ओर बढ़ गई।

वापसी पर कोठरी कितनी वीरान हो गई थी। रही-सही रौनक भी पनवाड़ी के तख्ते पर छोड़ आई थी वह। कोठरी का दरवाजा बन्द करके वह पिछवाड़े सहन में चली गई और टूटी हुई खाट पर लेट कर हवा से हिलती हुई चटाइयों को देखने लगी।

जिस जोड़े को इतनी बेदर्दी से वह पनवाड़ी के तख्ते पर पटक आई थी, अब उसकी याद कलेजे की हूक बन गई थी। जुएँ फिर से उसे काटने लगी थीं। इधर जब से वह जोड़े की मालिक बनी थी उसे ख्याल ही न रहा था कि इस शरीर में जुएँ भी हैं। अब वह सारा दिन खाट पर पड़ी खबर-खबर खुजलाया करती।

कई दिन यूँ ही गुजर गये। वह खोई-खोई फिरा करती। शाम को अम्मा उसे नीची-नीची नजरों से देखकर घुटी-घुटी आहें भरती। उन्होंने दूसरी बार साहब के अर्दली का भी जिक्र न किया था। उसने तो कई बार अम्मा की तरफ इस तरह देखा था जैसे पूछ रही हो—'क्या हुआ साहब के अर्दली का, कहीं उसे भी तो सलाम कराई में साइकिल न चाहिए ?' अम्मा इन नजरों को देखकर कन्नी काट जातीं। वह कैसे कहतीं कि अर्दली भी उनके झाँसे में नहीं आया। वह भी खाते-पीते घरों के ख्वाब देख रहा है।

आज रात जब अम्मा खा-पीकर अपने बिस्तर पर लेट गईं तो किसी ने जोर से दरवाजा खटखटाया। वह जूठे बर्तन साफ करती हुई हाथ रोक कर बैठ गई। अम्मा उठकर दरवाजे की तरफ लपकी और साँकल खोलकर टाट के पर्दे के पास खड़ी हो गई। बाहर पनवाड़ी की आवाज आ रही थी, उसका जी चाहा, चीख पड़े।

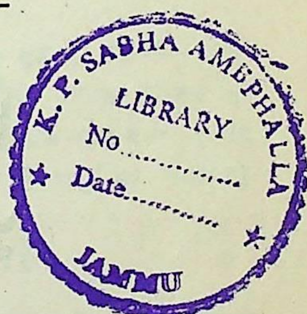
'अम्मा जी यह रुक्का और कपड़े रख लो, अम्मा रिश्ता मंजूर हो तो सबेरे कहला देना।'

दिए की रोशनी में वह 'दिल की प्यास' के नारंगी जोड़े पर झुकी हुई थी और वह सिर झुकाए चुपचाप बर्तन रगड़ रही थी।

अनु०—हसन इब्राहिम असरावी
द्वारा, ए० एच० टेलर्स,
६८८, शीश महल,
तेली वाड़ा,
दिल्ली—६

आजादी के पचीस वर्ष पूरे हुए ।

राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से निर्माण
और विकास के जो प्रयत्न प्रारम्भ हुए उनका
एक दौर समाप्त हुआ । देश ने शक्ति
पथ पर पहला कदम बढ़ाया ।
आर्थिक दासता और परा-
वलम्बन की बेड़ियाँ
भी कटना
प्रारम्भ हो
गयी
है ।
किन्तु
कतिपय
विदेशी ताकतें
और देश के अन्दर
छिपे निहित स्वार्थ बाधायें
खड़ी करने को उद्यत हैं । खेती
खलिहानों, उद्योगों कारखानों और
स्कूलों कालेजों में अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर ही
हम इन देश-द्रोही तत्वों का मुकाबला कर सकते हैं ।

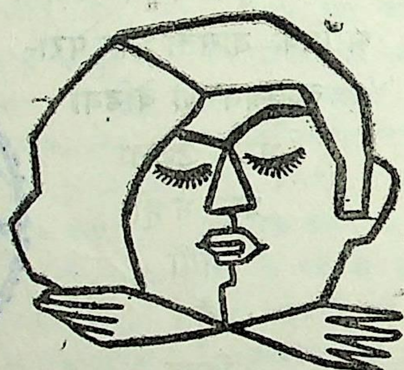


सूचना विभाग उत्तर प्रदेश

ग—१३५०७

व्यंग्य

इति श्री भगवान उवाच



देवियों, माताओं और बहिनों (ये वे संबोधन हैं जिनसे शरद जोशी अपनी भूतपूर्व प्रेमिकाओं को पुकारते हैं—चूँकि मैंने इन प्रेमिकाओं को ध्यान से नहीं देखा है, मैं दावे के साथ नहीं कह सकता कि इन अपूर्व और भूतपूर्व देवियों में से कितनी मातृत्व की स्थिति तक पहुँच गयी हैं और यदि पहुँच गयी हैं तो उसमें जोशी जी का कितना योगदान है) यह पत्र मैं आपके ही लिए लिख रहा हूँ। शेष कुछ प्रवृत्तियों के साथ-साथ स्त्रियों में भक्ति की भावना भी बड़ी प्रबल होती है और इस कारण यह उचित ही होगा कि यह पत्र आपको ही संबोधित करके लिखा जाए।

बात यह है कि अब तक मैं केवल एक कवि और व्यंगकार ही था। परसों रात से मैं अचानक भगवान हो गया हूँ, जिसकी सूचना इस पत्र के माध्यम से आपको दी जा रही है। मेरे अचानक भगवान हो जाने पर आपको कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। मैं तो लगभग चालीस वर्ष का हूँ—इस देश में तो तेरह वर्ष

की आयु में भी लोग भगवान की स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं। वैसे भी आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है और पता नहीं कि प्यादा कब फर्जी बन जाए। इसके अतिरिक्त जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, गीता के अनुसार तभी-तभी भगवान मनुष्य के रूप में प्रकट होते हैं। इस समय धर्म की हानि का उत्पादन इतने बड़े पैमाने पर किया जा रहा है कि मेरे साथ और भी कई भगवान सीन पर मौजूद हैं। आचार्य रजनीश जी पिछले एक ही वर्ष में भगवान रजनीश हो गये। लाला खैराती-लाल ने अपने लड़के का नाम कृष्ण भगवान रख लिया। ऐसे में यदि मुझे उच्चगति प्राप्त हो गयी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। खरबूजे की तरह आत्मा भी आत्मा को देख कर रंग बदलती है। अपनी आत्मा तो वैसे भी हमेशा से ही रंगीन तबीयत की रही है। कलर बाई टैक्नीकलर।

मुझे अपने भगवान होने का पता सहसा ही लगा। बुद्ध जी को ज्ञान प्राप्त करने में वर्षों लगे थे जबकि दयानन्द सरस्वती को एक चूहे की हरकत ने एक ही रात में ज्ञान दे दिया था। मार्क ट्वेन की पत्नी को जादू से ठीक करने वाले डाक्टर की भाँति परसों मुझे सहसा यह अनुभव हुआ कि मैं जो भी चाहता हूँ वह संपन्न हो

रवीन्द्रनाथ त्यागी

जाता है। मैंने स्विच दबाया और बत्ती जल गयी। मैंने हाथ दिया और रिक्शा रुक गया। मैंने टैप खोला और पानी गिरने लगा। मैंने दियासलाई पर तीली रगड़ी और अग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी। मैंने गाड़ी का क्लच छोड़ा और एक्सीलेटर दबाया और गाड़ी चल पड़ी। मैंने घंटी बजाई और चपरासी हाजिर। एकदम अलादीन के चिराग वाला जादू। मैं समझ गया कि मुझे दिव्यशक्ति प्राप्त हो गयी। अब आप ही बताइये कि इस आनन्द के मार्ग को क्यों छोड़ूँ ?

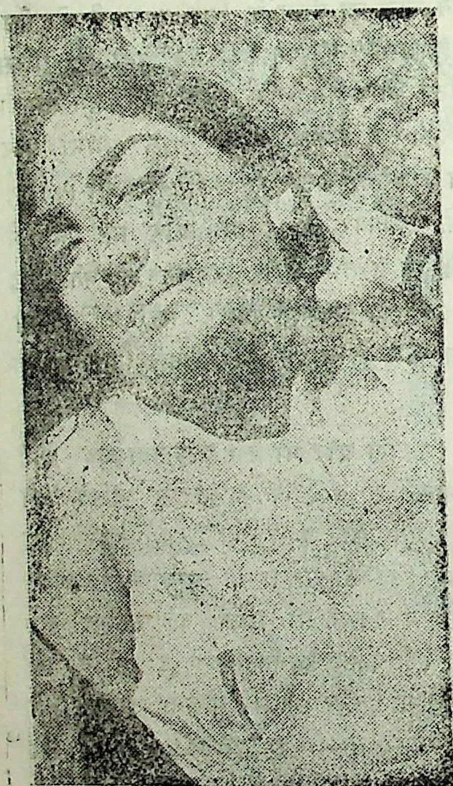
तो देवियों, माताओं और बहिनों, इन दिनों मैं भगवान चल रहा हूँ। जो कुछ माँगना है माँग लो और जो कुछ अर्पित करना है वह अर्पित कर दो। अर्पित करना तो कोई काम की चीज करना—सुभद्रा कुमारी चौहान की 'ठुकरा दो या प्यार करो' वाली मजाक नहीं चलेगी। संतान माँगना है तो माँग लो। मिलेगी। पति ने अगर नसबंदी भी करा ली, संतान तब भी मिलेगी। पति चाहती हो तो वह भी माँग लो; वह भी प्राप्त होगा चाहे शादीशुदा ही क्यों न हो। किसी की जिन्दगी बर्बाद करनी है तो खुशी से करो। बन्दा उसमें भी तुम्हारी मदद करेगा। जिधर सत्य है, उधर मैं हूँ। जिधर पीपल का वृक्ष है, उधर तुम हो।

शादी से लेकर साम्प्रदायिक दंगों तक, भगवान् के नाम पर जो कुछ भी करना है, जल्दी करो। वक्त कम है क्योंकि पता नहीं कब मैं वही पुराना घिसा-पिटा पत्नी से डरने वाला रवीन्द्रनाथ त्यागी बन जाऊँ जो बीड़ी के लिये चपरासी से पैसा माँगता है। इन दिनों तो हिम्मत बुलन्द है, उत्साह की पताकायें उड़ रही हैं, पुलिस के अफसर भुनगे लगते हैं, संपादक को पीटने की तबीयत कर रही है और तुम सबको छाती से लगा कर अपनापन जाहिर करने की व्याकुलता है ताकि आत्मा और परमात्मा का भेद मिट जाये। इस कारन जो सेवा करनी है, अभी कर लो। तन, मन और धन, सेवा के ये तीनों मार्ग मुझे स्वीकार हैं। तन और धन को मैं प्राथमिकता देता हूँ जो मेरी विवशता है। हर भक्त की और हर भगवान की कुछ मजबूरियाँ होती हैं और इनसे घबराना गलत है। हिम्मत रक्खो, मेरा पाणिग्रहण करो और स्वर्ग का सुख लूटो। सफेद बाल काले हो जायेंगे और काला धन सफेद हो जायेगा।

इस जल्दी करने का एक विशिष्ट कारण और भी है। पता नहीं कब कोई ईर्ष्यालु व्यक्ति मेरे और तुम्हारे पवित्र सम्बन्धों को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे और मुझे तुम्हारे साथ बड़े घर जाना पड़े। ऐसी कोई चीज नहीं जिसमें चार लोग टाँग न अड़ाते हों। राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह की सूचना के अनुसार विवाहित या अविवाहित एक ही चूहा दपति पाँच वर्ष में लगभग नौ खरब चूहे उत्पन्न कर सकता है पर उसके इस पुनीत यज्ञ में मांसाहारी पक्षी इतना विघ्न डालते हैं कि हमारी पंचवर्षीय योजनाओं की भाँति चूहे की भी पाँच साला योजना खलास हो जाती है। इस कारण शत्रुओं से सावधान रहना जरूरी है और इसी ध्येय को ध्यान में रखते हुये यह उचित होगा कि इस बात को हम और तुम अपने ही बीच में रक्खें। 'चुप रहौ काम, तू चुप रहौ, बैरिनि ना सुनैं।'

फिर न कहना कि वक्त पर खबर नहीं दी। मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। फैसला तुम्हारे हाथ में है। जौन सा चाहो, भिजवा दो या खुद आकर दे जाओ। सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में 'फिलहाल मैं बोध के सर्वोच्च शिखर से बोल रहा हूँ।' बस।

कहानी



देहगाथा

श्रौर शाम हो गई ।

पलंग पर से उठते हुए दीप्ति बनर्जी ने तस्वीरों वाली पत्रिका एक तरफ उछाल दी । लाइट का स्विच दबाया श्रौर खिड़की तक श्रा गई । खिड़की से उसने बाहर लान में देखा—जहाँ लड़कियाँ ही लड़कियां बैठी अधलेटी थीं दूब में । श्रौर दीप्ति बनर्जी की इच्छा हो रही थी कि फटाफट कमरे से बाहर निकल जाये। हास्टल से भी । श्रौर चलती चली जाये, चलती चली जाये भीड़ भरी सड़कों पर। नियोन लाईट्स के एक-एक लैम्पपोस्ट को छूते हुए । लोगों के कन्धे से कन्धा रगड़ते हुये श्रौर जब बुरी तरह थकान महसूस करे तो कहीं भी लेट जाये—किसी भी

फुटपाथ पर या किसी भी चौराहे पर। परन्तु कुछ भी नहीं करती, दीप्ति बनर्जी, कर ही नहीं पाती। कितना अन्तर होता है, करने में और सोचने में। कहाँ की उड़ानें, सैर और कहाँ यह इमारत, यह कमरा और इस कमरे की खिड़की की चौखट पर रखी उँगलियाँ। बचपन में सहेलियाँ एक मेज के गिर्द आठों उँगलियां रख कर बैठ जाती थीं, फिर पचास तक गिनती, फिर कोई गाना, कोई चुटकला, कोई गप्प, इस तरह चलता रहता, पूरी दोपहर बीत जाती, सब चिल्लाती-चीखती रहती— और कहां ये अंधेरे में ओझल हो रही दूब पर बैठी लड़कियों की आकृतियां·· मंजरी अभी तक नहीं आयी। कर रही होगी—हलो, नम्बर प्लीज, एंगेज, वेट फार ए मिनिट, पाड़ंन सर, थैंक्यू ?······और उसका नीला कुर्ता पसीने में भीग रहा होगा। सलवार की सीट पर अतिरिक्त सलवटें पड़ गई होगी घूमने वाली कुर्सी पर बैठे, बैठे।······ मंजरी सेन दीप्ति बनर्जी की रूम पार्टनर है। गौरवपूर्ण। छरहरी। मंजरी सेन के बदन से हर वक्त कोई न कोई खुशबू निकलती रहती है। मंजरी सेन जो रात में अपना पलँग छोड़ अपनी दीपा डार्लिंग के पास सोने के लिये आ जाती है—वहां मेरे पलँग के ठीक उन पर छत पर छिपकली है, डर लगता है, ऐसा लगता है गिर

सूरज करेशा

पड़गी छिपकली मेरे बदन पर। मंजरी सेन—'डरो नहीं।' और मंजरी सेन जिसके गुलाब की पत्तियों की तरह महकते मुलायम होठों को बेरहमी से चूसते हुए दीप्ति बनर्जी खून छलछला देती है।······

दीप्ति बनर्जी एक बार पंखा बंद करती है। फिर रेग्यूलेटर घूमा पूरी गति से चला देती है। और दीप्ति बनर्जी सोचती है—आफिस में काम करने वाले सहयोगी अशोक की लिफ्ट देगी। उसे हायडड हैण्डसम कहेगी। उसके विचारों और बोलने के लहजे की तारीफ करेगी। परन्तु दीप्ति बनर्जी को सुपर बाजार में काम करने वाले सेल्समैन मनीश की याद आती है। दीप्ति बनर्जी को उससे मिलने पर लगता है कि वह पसीने में भींगने लगा है। और पसीना उसकी टांगों तक अवश्य जाता होगा, दीप्ति बनर्जी को लगता है। दीप्ति बनर्जी का जी करता है कि उसकी टांगों में बर्फ भर दे। स्साला मंजरी सेन को देखते ही खीसें निपोरने लगता है। कुछ न कुछ बतौर गिफ्ट दे देता है। और मंजरी सेन भी तो भावुक हो जाती है। कहीं भीतर ही भीतर भींग जाती होगी। पूरे रास्ते तभी तो कुछ नहीं बोलती है। कहीं खोई रहती है।

दीप्ति बनर्जी घड़ी की तरफ देखती है—हद हो गई है। वास्तव में कहीं सुपर बाजार से सेल्समैन मनीश के पास ही तो नहीं चली गई। कॉफी बनाती हूं। हो सकता है, तब तक आ जाये। नहीं, लान पर टहलने चलती हूं। तेज-तेज चलने वाले पंखे के बावजूद पसीना आ रहा है। गर्मी से सब कुछ उबल सा रहा है। हो सकता है गीली नर्म दूब पर ही कुछ आराम मिले। परन्तु लान में आने पर दीप्ति बनर्जी का टहलने का इरादा अलसा जाता है। वह एक कोने में लेट जाती है। होस्टल के अधिकांश कमरों में से आती खिलखिलाहटों, फिल्मी गीतों के शोर को नजर अन्दाज करती सी। और वह याद करती है कि बम्बई से खत आया है, पिता गम्भीर रूप से बीमार हैं। इसी कारण उसने रविवार कमरे में बंद रह कर गुजार दिया, न अशोक से मिलने गई, न ही फिल्म देखने गई और न ही कहीं घूमने गई। बस सिलसिला हीन विचार कल रात से दिमाग में चल रहे हैं, और अब वह थक गई है। करे भी क्या पिता के लिये। कैसे उन्हें एलफिस्टन की चाल से उठा अच्छे टी० बी० सेनिटोरियम में भेजे। काम का बोझ भी कितना है, अवकाश भी नहीं मिल सकता। अगर मिल भी गया तो क्या होगा। पिता को यहां बुलाये तो भाई-बहिन के अध्ययन का क्या होगा? और वैसे भी कभी कभार का पत्राचार सम्बन्धों की गर्माहट समाप्त कर चुका है। अब तो यही है कि हां एक पिता है, एक भाई है, और एक बहिन है। बस, और कुछ भी नहीं। कैसे भी नहीं। उनका होना महसूस नहीं हो सकता। हर महीने रुपया भेजने पर भी नहीं। दीप्ति बनर्जी को अब बम्बई याद नहीं आती। भागती बिजली की गाड़ियां याद नहीं आती। एलफ़िस्टन की वह इमारत भी याद नहीं आती। वहां रहने वाले लोग याद नहीं आते। मंजरी सेन आश्चर्य से आंखें फैला कर कहती है—यहाँ लोग रहते हैं। एक-एक बिल्डिंग में, एक-एक गांव भरा है।......दीप्ति बनर्जी को कभी मंजरी सेन की आश्चर्य भरी बातें छूती नहीं, पास से गुजर जाती हैं। और दीप्ति बनर्जी की मुट्ठियां भिच जाती हैं। होंठ कस कर जुड़ जाते हैं। नसों में खून लगता है तेजी से दौड़ने लगा है। तब दीप्ति बनर्जी दीप्ति बनर्जी नही रहती। कुछ और हो जाती है। शायद तब दीप्ति बनर्जी टाम अंकल की गोदी में बैठी कोई भी दस वर्ष की लड़की हो जाती है। जिसे एक दिन टांगों के बीच बहुत दर्द हुआ था। और होश आने पर वह देर तक अपना खून सना फ्रॉक देखती रही, रोती रही। और टाम अंकल कभी नहीं दिखा था। पिता को भी नहीं। पुलिस को भी नहीं। और उसने अपना खून सना फ्राक सब की नजर बचा अपनी सन्दूकची में रख दिया था। कभी-कभी देख भर लेने के लिए।......

और याद आती है दीप्ति बनर्जी को विमल की। सीधा-सादा लड़का। रोज समय से स्टेशन पहुँच जाने वाला। तब दीप्ति बनर्जी नौकरी करने लगी थी। बी० ए० करने के बाद। और चोरी-चोरी अपनी तरफ देखने वाले विमल के चेहरे पर अचानक आंखें गड़ा देने में दीप्ति बनर्जी का मजा आता था। आंखें मिलते ही वह घबरा जाता था। इधर-उधर देखने लगता था। तब दीप्ति बनर्जी की इच्छा होती उसको चिढ़ाने के लिये हंसे। तालियां बजाये। परन्तु कुछ ही दिनों बाद दीप्ति बनर्जी उससे बातें करने लगी। उसके तरीके से सँवारे गये बालों में उँगलियां डाल उन्हें ललाट पर बिखराने लगी। आफिस के बाद शामें उसके साथ गेटवे आफ इंडिया, वरली सी फ़ेस, जुहू या मेरीन ड्राईव क्षेत्र में घूमते बातें करते बिताने लगी। फिल्में देखने लगी। और उसके साथ पाली हिल्स या मलाबार हिल्स पर छोटे से खूबसूरत बंगले में रहने की कल्पना करने लगी। जहां वह हो यानि दीप्ति बनर्जी और वह हो यानि विमल। यानि दीप्ति बनर्जी हो, विमल हो। विमल हो, दीप्ति बनर्जी हो। परन्तु विमल ही नहीं रहा अब तो वह दीप्ति बनर्जी कहां से रहे। विमल इसीलिए नहीं रहा शायद कि दीप्ति बनर्जी को उससे कोई शिकायत नहीं थी। गिला नहीं था। उसकी सूरत के भोलेपन से प्यार था। उसके साथ घंटों जुहू समुद्र तट पर घूमना अच्छा लगता था। रेस्तरां में बठ कोक पीते हुए रिकार्ड चेंजर पर बजते गीतों का अर्थ मन में घुलने लगता था। और एक बार विमल ने कहा था—दीपा हम मलाबार हिल पर एक छोटा सा बंगला लेंगे। बंगले के आगे बगीचा भी होगा। बगीचे में गुलाब होंगे। चमेली होगी। रात रानी होगी। मैं शाम को ठीक समय पर अपने काम से लौटा करूंगा। तुम कभी हाल में रखा पियानों बजाना। और कभी हम रिकार्ड प्लेयर पर नये-नये प्यारे-प्यारे संगीत के रेकार्ड बजायेंगे। गुनगुनायेंगे। जैसेजैसे रात जवान होती जायेगी, रात रानी की नशीली महक हमें पागल करती रहेगी। हम बैठे-बैठे बातें करते रहेंगे—ढेर से विषयों पर क्रिकेट के बारे में, संगीत के बारे में फैशन के बारे में। प्यार के बारे में। कविता के बारे में। तुम वह रूसी लोकगीत तो, अवश्य सुनाना। जो तुम्हें बहुत पसंद है। कितने प्यारे बोल है उसके—'देवदार के वृक्ष के नीचे मेरा बिस्तर लगा दो। जरा सी भी आहट न होने पाये। देवदार मुझे अपनी प्रेमिका के सपने में खो जाने दो, जाने दो……।'

और एक दिन विमल ने कहा—'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ दीपा।'……तो फिर क्या करें……दीप्ति बनर्जी ने पूछा। पर उसकी आंखों के आगे टाम अंकल घूम गया। खिलर-खिलर हँसता। ढीले-ढाले पेन्ट कमीज पहने। खिचड़ीदार सफेद

बालों में खिजाब लगाये। रह-रह अपने चश्में को नाक से ऊपर ठीक करता। और जांघों के बीच का दर्द घूम गया। खून में सना अपना फ्रांक घूम गया। उसे लगा वह फिर वैसे ही बेहोश हो जायेगी। ठीक उसी तरह—जब उसकी जांघों के बीच असहनीय पीड़ा हुई थी। और रोते-रोते वह एकदम ढीली पड़ गई थी। और टाम अंकल की खीहीडड खीहीडड हँसी को अपने से दूर करने के प्रयत्न में उसकी आँखें बन्द हो गई थी। दीप्ति बनर्जी फिर सोच रही थी कि क्या वही सब फिर दोहराया जायेगा। एक बार फिर। परन्तु विमल तो टाम अंकल जितना बड़ा नहीं है। उम्र में तो मुझसे भी छोटा है। इसके बदन में तो फूलती कोमलता है। महक है। यह क्या हानि पहुँचायेगा। उस दिन तो हकबका कर रह गया था। नहीं मेरा यह कहने का अर्थ नहीं था। यह सब तो शादी के बाद। परन्तु आज क्यों ? लगता है कमजोर हो रहा है विमल, संकल्पहीन हो रहा है—दीप्ति मन ही मन बुदबुदाई।

और दीप्ति बनर्जी ने जूते उतारते विमल को देखा। उसके मोजों में से उठती बदब के भमके को महसूस किया। दीप्ति बनर्जी का जी चाहा कि वह कमरा खोल दौड़ जाये, दौड़ती चली जाये सड़क पर। किसी कार के नीचे आ जाये। किसी इलेक्ट्रिक ट्रेन के आगे अपने को फेंक दे।·········परन्तु कुछ भी नहीं किया ऐसा उसने। खड़ी रही। विमल के चेहरे पर आये एक नये रंग को देखती रही। देखती रही। फिर एकदम विमल के सामने खड़ी हो गई—लो जो चाहते हो पूरा कर लो। मैं कुछ भी नहीं कहूँगी। बस एक दिन मैंने तुम्हें टाम अंकल वाली बात बताई थी न, अपना खून में सना फ्राक दिखाया था ना—उसे याद मत रखना मन में एक दिन तुम बात करने को लालायित थे ···इतनी ही सी बात है, सो मैंने करली। और आज कह रही हूँ विमल—"बस इतनी सी ही बात। तो लो मैं प्रस्तुत हूँ। किसी वस्तु के रूप में नहीं, किसी खिलौने की शक्ल में नहीं······एक भरपूर औरत की तरह। पता नहीं क्यों मैं चाहती हूँ कि जो कुछ तुम चाहो, तुम्हें दे दूँ। और कभी नहीं दे सकी तो अफसोस होगा।" और दीप्ति बनर्जी ने आगे बस अपनी बाहें विमल के गले में डाल दी।·········

कितने दिन बाद तो गांव से लौटी है मंजरी सेन। परन्तु मनीश के साथ घूमने से ही फुर्सत नहीं मिलती उसे। सोचा था आज रविवार है, मिलेगी परन्तु ओवरटाइम का बहाना लगा गई। कितने दिन गिन-गिन कर काटे थे मैंने। एक··············दो··············तीन··············सात··············पन्द्रह ·········बीस।

इक्कीसवाँ दिन भी बीत गया था । न गांव से लौट कर मंजरी सेन आई थी। न ही उसका पत्र। हास्टल से आफिस और फिर वही हास्टल के बीच घूमती रही हूँ, कभी मन करता है मनीश से ही पूछूँ या अपने आफिस में काम करने वाले अशोक के साथ घूमू, बातें करूँ। और न ही जगजीत वालिया को अपने कमरे में बुला पाती हूँ। डर लगता है। बस कमरा बन्द किये मंजरी की एकत्रित की गई किताबें पढ़ती, ऊबती रहती हूँ। नींबू की चाय पीती रहती हूँ। मंजरी का चित्र टेबिल पर रखे फ्रेम में से निकाल कर फाड़ दिया। बहुत ही अजीब लगा था मंजरी के बिना उसका छवि चित्र न जाने कहाँ देखती आंखें। न जाने क्या करते होंठ। और न जाने कहाँ उड़ कर जाने को तत्पर केश। कुछ भी सहन नहीं हो रहा है। परन्तु न मंजरी सेन आ रही है। न उसका पत्र। वह नहीं लिखती तो उसकी माँ ही क्यों नहीं लिखती कि ब्याहता स्त्री हो गई है। मंजरी सेन। या कहीं भाग गई है मंजरी सेन। या नदी के किनारे घूमने घरौंदे बनाने गीत गाने में सब कुछ भुलाए हुए है मंजरी सेन। और मैं शाम होते ही खिड़की के बाहर देखने लगती हूँ। मंजरी सेन के आने के लिए कि कहीं वह दूर से चली आ रही है, खरामां खरामां।......परन्तु थोड़ी देर बाद ही आंखों के आगे अन्धेरा सा छाने लगता है। फिर एक सफेद कैनवास उस अन्धेरे को चीर कर फैल जाता है। लगता है मुझे उस सफेद कैनवास पर कोई चित्र बनाना चाहिये। कोई प्रेरित कर रहा है।

पास ही रखी शीशियों में से रंग निकाल कर प्लेट में घोलती हूँ। परन्तु ब्रुश हाथ में लेते ही रुक जाती हूँ। पहले किस रंग से ब्रुश डुबाऊँ। और मंजरी सेन कौन सा चित्र बनाना चाहती। जगजीत वालिया कौन सा चित्र बनाना चाहती। और विमल.........यह बार-बार विमल का नाम क्यों आ जाता है दिमाग में! और क्या सचमुच में एक कैनवास मिल ही गया है। झुंझला उठती है दीप्ति बनर्जी। ये ख्याल ये सपनों का सफर कहां-कहां ले जाता है। कितना भटकाता है और इतने लम्बे सफर के बाद भी कोई पीछे नहीं छूटता। न मंजरी सेन, न पिता, न तृप्ति, न भैया, और न हीं विमल। न ही टाम अंकल को.........भूल पाती है। न अपने खून से सने फ्राक को। और न हीं मंजरी सेन की देह गंध को भूल पाती है। विमल की लाश भी नहीं भूली जाती। चाकूओं से गोद कर मार दिये जाने के बाद से ही विमल के बारे में सोचना बन्द कर देने का प्रयत्न किया था—परन्तु कितनी सफल हुई। बस एक बात बहुत ही

हल्के से आस-पास चहल कदमी करती है—जब विमल एक व्यक्ति को उसके पास ले गया था। वह आदमी दूसरे कमरे में बैठा सिगरेट फूंक रहा था। और विमल उसके पैरों में गिरा रोता रहा—दीपा मैं मर जाऊंगा। बस पहली और आखरी बार तुम मेरी बात मान लो। एक बार तो दीप्ति बनर्जी की इच्छा हुई अपने पैरों में गिरे रोते इस व्यक्ति को धक्का देकर अपने से अलग कर दे। परन्तु वह ऐसा नहीं कर सकी। उसने विमल के बालों में उँगलियाँ डाल उन्हें बिखरा दिया। हँसने लगी ·········तुम इतने छोटे क्यों हो रहे हो विम्भू। क्या तुम्हें इतना भी विश्वास नहीं कि मैं तुम्हें निराश नहीं करूँगी।·········और दीप्ति बनर्जी गुनगुनाती-गाती दूसरे कमरे में चली गई। उस आदमी के पास जो सिगरेट पी रहा था—जिसका नाम वह नहीं जानती थी। एकदम उसके सामने खड़ी हो गई। उसकी आंखों में आंखें डाल मुस्काने लगी। वह आदमी घबरा कर खड़ा हो गया। और दीप्ति बनर्जी को उसके गले में बाहें डालते हुये, उसके होठों पर तम्बाकू की बदबू महसूस करते हुये कुछ भी याद नहीं आया। टाम अंकल भी नहीं अपना खून भीगा फ्राक भी नहीं और टांगों में उठा दर्द भी नहीं। और वह सोचती रही·······अब वह उस दिन की तरह बेहोश क्यों नहीं होती ? क्या अब कभी भी बेहोश नहीं होगी। या वह अब हमेशा के लिये बेहोश ही है। टाम अंकल मिल जाये तो अवश्य ही पूछेगी—मैं होश में हूँ या बेहोश हूँ, उस दिन के बाद से। बताओ प्लीज।·········

और अब उसकी इच्छा हुई कि वह विमल से कहे—लाओ मलाबार हिल्स पर मेरे लिये एक बंगला लाओ। कहां है वहां। मैं वहां रहना चाहती हूँ। मैं रात रानी की महक और तुम्हारी सांसों की गंध का फर्क जानना चाहती हूँ। मैं तुम्हें वह रूसी लोकगीत सुनाना चाहती हूँ जिसे तुम बार-बार भूल जाते हो। मैं तुम्हारे बच्चों की मां बनना चाहती हूँ। जिन्हें सुबह मैं अपने हाथों से नहलाऊँ, प्रेस किये कपड़े पहनाऊं, बेग और टिफिन देकर खुद मोटर में स्कूल छोड़ कर आऊँ·· ···परन्तु इसके पहले ही दीप्ति बनर्जी ने अपनी चाल के बरामदे में खड़े-खड़े देखा कि चार लोगों ने विमल को अपनी चाल से आवाज देकर बुलाया और सड़क पर खड़े बात करने का अभिनय करते रहे। यकायक एक ने पीठ पीछे से चाकू मारा, फिर दूसरे तीनों ने तेजी से अपने चाकू थोपे और लाल सुर्ख कार में बैठ भाग गये······। क्या हुआ··· क्या हुआ की भाग-दौड़ हुई और वह कुछ समझ पाये इतने ही में लोगों का शोर गूँजा खून·····खून·····।

दीप्ति बनर्जी ने महसूस किया कि उसकी पूरी पीठ पानी में भीग चुकी है।

लगता है किसी लड़की ने महसूस किया हो कि मैं अब लेट गई हूँ और जगाने के लिये नल चला गई हो। वह उठी। थोड़ी देर हास्टल की पीली इमारत को देखती रही। कमरों से बाहर निकलते रोशनी के टुकड़ों को देखती रही। फिर अपने कमरे में चली गई……।

दरवाजा बजता है। यंत्रवत सी कुर्सी से उठ कर चलती दीप्ति बनर्जी दरवाजे तक आती है। खोलती है। और सामने मंजरी सेन को नहीं खड़ा पा वापिस बन्द कर देना चाहती है। परन्तु झिझकती जगजीत वालिया भीतर आ ही जाती है। जगजीत वालिया -- जो हर रविवार किसी नये लड़के, नये मर्द के साथ सिनेमा देखने जाती है। रेस्तरां में जाती है। और रात देर गये डरते-डरते हास्टल लौटती है। एक बार दीप्ति बनर्जी ने देखा भी था जगजीत वालिया को बेहद सलवट भरे कपड़ों में। पूछा तो जगजीत वालिया रोने लगी। फिर दीप्ति बनर्जी के पास पलंग पर सट कर बैठते हुये कहने लगी……मां गांव से हर हफ्ते पत्र लिखती है। कहती है, शादी कर लो। परन्तु फिर ऐसे रविवार आयेंगे क्या जिन्दगी में। ऐसे घूम-फिर सकूंगी क्या ? मैं बच्चा नहीं पैदा करना चाहती। तुम्हारे पास टेबलेट्स हो तो दे दो। इस बार बहुत डर लग रहा है। यह दुनिया बकवास है। घटिया है।……दीप्ति बनर्जी का जी करता है उसे अपनी बाहों में भर ले। सांत्वना दें। उसे कहे, आ, मेरे पास आ। कुछ भी नहीं होगा। दर्द भी नहीं होगा। डर भी नहीं लगेगा। वहाँ गेस्ट रूम में पड़ी ग्लास टैंक देखा है। कैसे तैरती रहती हैं मछलियां। फिर कैसे एक दूसरे से चिपट जाती हैं। साथ-साथ तैरती रहती हैं। एक बार मैनेजर मिसेज रायजादा को दिखा दिया तो डांटने लगी। घूर-घूर कर देखने लगी। परन्तु शाम को जब मिस्टर लोहिया की कार में बैठ कर चली गई तो ? शायद सब कुछ ठीक हो गया होगा। समझ में आ गया होगा। जा रही हो, जाओ। चली जाओ। जगजीत वालिया। तुम बेवकूफ हो। कुछ नहीं समझती। बस यही काफी है तुम्हारे लिये कि भटकती फिरो। एक पुरुष से दूसरे पुरुष के पास। कार से टैक्सी तक। बाग से थियेटर तक। समुद्र किनारे से रेस्तरां तक। और हर रात बिस्तर में पड़ी सिसकती रहो। अपने गंदे कपड़े देखती रहो। हास्टल के धोबी से कपड़ों पर से दाग धब्बे साफ नहीं करने के लिये झगड़ती रहो। और दिन भर गोलियां ढूंढ़ने के बाद हर शाम लेम्प पोस्ट के नीचे खड़ी हो जाओ। जाओ……

और मंजरी सेन अभी तक नहीं आई। ओवरटाइम कर रही होगी। अब आयेगी तो थकान से पूरी तरह से टूट कर। आते ही बिस्तर में पड़ हांफती

रहेगी। एकटक छत की तरफ देखती रहेगी। कुर्ती का सामने वाला ज़िप खोले हुये·····जहाँ दो पहाड़ उभरे होंगे। और वह बेदम लगेगी। जैसे दिन भर उसे ही दौड़-दौड़ कर लोगों को आमने-सामने खड़ा करना पड़ा हो, बातों के लिये। फिर थोड़ी ठीक होगी तो कहेगी·····इन्टरनेशनल ट्रेडिंग कारपोरेशन के मैनेजिंग डायरेक्टर मिनोत्रा के लड़के ने आज भी चार लड़कियों को फोन किये··· एक ही तारीख पर अलग-अलग हिल स्टेशनों पर शादी हनीमून के वादे किये और फ़िर रोने लगेगी·····दीपू डार्लिंग, एक अमरीश मिनोत्रा कैसे शादी करेगा, सुष्मा से, श्यामा से, नफीस से, फिलिप से। कितना धोखा है दुनियां में। मैं टेलीफून की नौकरी छोड़ना चाहती हूँ। कान पकने लगे हैं वाहियात बातों से। जी करता है बुरी तरह बरस पड़ूँ उन लड़के-लड़कियों पर जो माँ-बाप के घर पर नहीं होने से कमरे बन्द कर घंटों आपस में बतियाते हैं। सरकारी अफसर सतीश वर्मा की पत्नी को पति द्वारा विमलेश शर्मा से किये जाने वाले प्रेम निवेदन सुनाऊँ। मैं तो एकदम तंग आ गई हूँ।·····और खाने की बात पर अवश्य मना कर देगी मंजरी सेन। कहेगी·······क्या करूँ, एक्सचेन्ज में फोन कर मनीश ने बुला लिया था। या वही एक्सचेंज में आ गया था। फिर हम रेस्तरां में खा भी आये। तुम नाराज तो नहीं हो दीदी। प्लीज, सही कहो ना।·····और दीप्ति बनर्जी उसे अपने सीने से लगा लेगी। निराश-मत होओ मंजू डार्लिंग—सब ठीक हो जायेगा कहते हुए·······फिर धीरे-धीरे उसकी पीठ सहलाने लगेगी दीप्ति बनर्जी। मंजरी सेन अपना कुर्ता उतार फेंकेगी—और तेजी से खुजलाओ दीपा पीठ। और, तेजी से। रिबिन से बँधे मंजरी सेन के बाल खुल जायेंगे, पीठ पर से नीचे उतरती हुई दीप्ति बनर्जी के उँगयिों को टॉप लेंगे। दीप्ति बनर्जी की उँगलियाँ मंजरी सेन की पीठ कूल्हों की तरफ बहती हुई जांघों के बीच पहुँच जायेंगी। मार्सल फिसलन भरी जांघों पर दीप्ति बनर्जी की उँगलियों का स्पर्श था मंजरी सेन खुशी से चीखने लगेगी। और ज्यादा तेजी से प्लीज और·····और दीप्ति बनर्जी को याद आया—विमल की हत्या के बाद जब वह अपनी चाल में गुमसुम पड़ी रहती थी तो एक बार पड़ोस में रहने वाली मराठिन दमयन्ती आई थी। कुछ देर पास बैठी रही। तबियत का हाल-चाल पूछती रही, पास लेटे हुए बातें करती रही। और उसके बालों में से आती सरसों के तेल की गंध को जबरदस्ती बर्दाश्त करते हुए दीप्ति बनर्जी उसकी बातें सुनती रही·······बातों ही बातों में दमयन्ती के हाथ उसके बदन से खेलने लगे और उसने झुक कर दीप्ति के होठों को अपने होठों से भींच दिया तो दीप्ति की इच्छा हुई की चीख कर उसे अपने से अलग कर

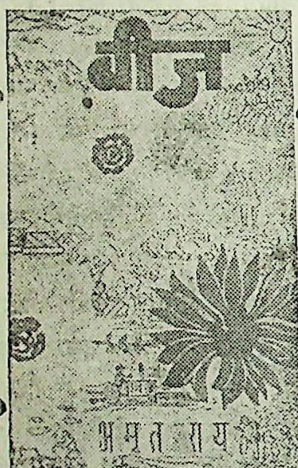
दे।······परन्तु वह नहीं कर सकी । थोड़ी कशमकश के बाद तो वह खुशी से चीखने लगी । उसकी इच्छा हुई दमयन्ती और तेजी से बदन को सहलाये । और तेजी से अपनी छातियां उसकी छातियों से रगड़े दबाये ।·········और जब दमयन्ती कुछ समय बाद चली गई तो·········दीप्ति बनर्जी उसकी वापसी की कल्पना करती रही । ··· उसकी उँगलियों की सरसराहट अपने बदन पर महसूस करती रही । करती रही······और अब मंजरी सेन······ ······उसकी देह वल्लरी······उसका रूप उसके बदन से निकलने वाली अजीब सी सुगन्ध············सब कुछ मादक किये दे रहा है·········थोड़ी देर बाद मंजरी सेन भी खुशी से चीखने लगेगी·········और तेजी से दीप्ति बनर्जी को अपनी बाहों में कसने लगेगी, दबी आवाज में फुसफुसायेगी, यहां वहाँ काटेगी और······जरा······यहाँ हाँ······और·········नहीं·········बस दीपा ·········दीपा······...और मंजरी सेन के बाहों का कसाव दीप्ति बनर्जी की देह को जकड़ेगा । दीप्ति बनर्जी के सीने के उभार मंजरी सेन के उभारों को मसकेंगे ।·········और थोड़ी देर बाद दो मछलियां लड़ती हुई, एक दूसरे को नोचती हुई, काटती हुई·········एक होती हुई अलग होकर ढह पड़ेंगी ।········· समुद्र के किनारे आये तेज गति तूफान के बाद गिरे दो नारियल वृक्षों की भाँति ।·········और गरजता रहेगा, सांसों का सागर भीगती रहेंगी वे दोनों गिरे हुए नारियल वृक्षों की तरह निश्चल पड़ी ।·········

जस्सूसर द्वारा बाहर
बिकानेर
राजस्थान

ये किस मुकाम पे पहुँचा दिया जमाने ने,
कि अब हयात पे तेरा भी इन्तिजार नहीं ।

साहिर

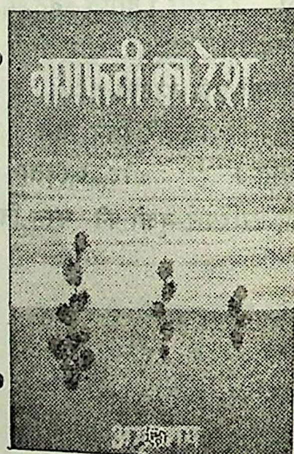
अमृतराय के उपन्यास



बीज

उपन्यास इतना आकर्षक है कि हाथ से छूटता नहीं। शैली इतनी सरल और इतनी जीवन्त कि लगता है कोई गले में हाथ डालकर घुल-मिल कर बात कर रहा है--आकाशवाणी, प्रयाग

मूल्य रु० ८·००



नागफनी का देश

'नागफनी का देश' अमृतराय जी का नया, नन्हा-मुन्ना उपन्यास है। पर है वह नावक का तीर ही।— राष्ट्रवाणी, पूना

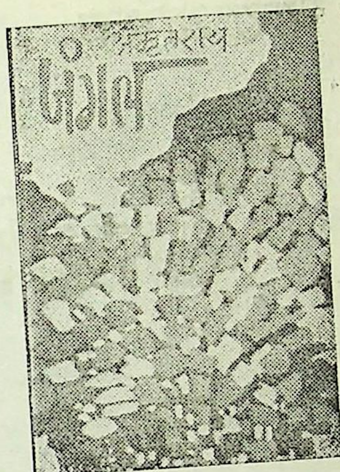
मूल्य रु० ३·००



हाथी के दांत

नवल कथा और उसकी कला के रूप में ही 'हाथी के दांत' अत्यंत सुन्दर नहीं है बल्कि हमारे समाज के वास्तविक चित्रण द्वारा उसके दुर्गुणों को जिस तरह प्रकट किया गया है वह भी स्तुत्य है—राहुल सांकृत्यायन

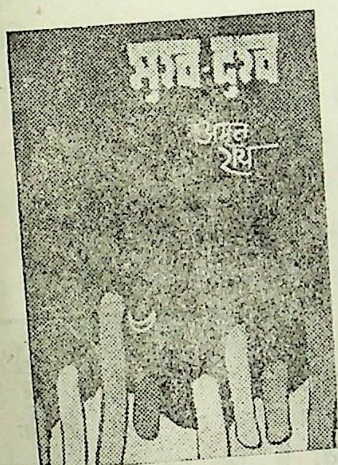
मूल्य रु० २·५०



जंगल

उस जंगल की कहानी है जिसमें हम आप रहते हैं, जो कि हमारा समाज हैं, जिसकी नैतिकता जंगल की नैतिकता है। तांत की तरह कसे हुए कथानक के माध्यम से कही हुई व्यंग्य-कथा,

रंग कथा……… मूल्य रु० ७·००



सुख-दुख

आदमी के जीवन का जो विचित्र ताना-बाना है, जहां आदमी अपने अस्तित्व का दास है, फिर भी ढूंढता-फिरता है सुख के दो चार क्षण…… उसी की मर्म-कथा, जिसे पढ़ना एक नई सी अनुभूति से नहा उठना है।

मूल्य ५·००



मटियाली

एक मार्मिक प्रेम कथा। एक लड़की के दो चाहने वाले। एक सुन्दर, सजीला युवक और दूसरा अंधा, युवा सन्यासी। प्यार कैसे-कैसे उतार-चढ़ाव के साथ, पानी की तरह बहता है यह पढ़ने पर ही जाना जा सकता है।

मूल्य रु० ३·००

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

धारावाहिक

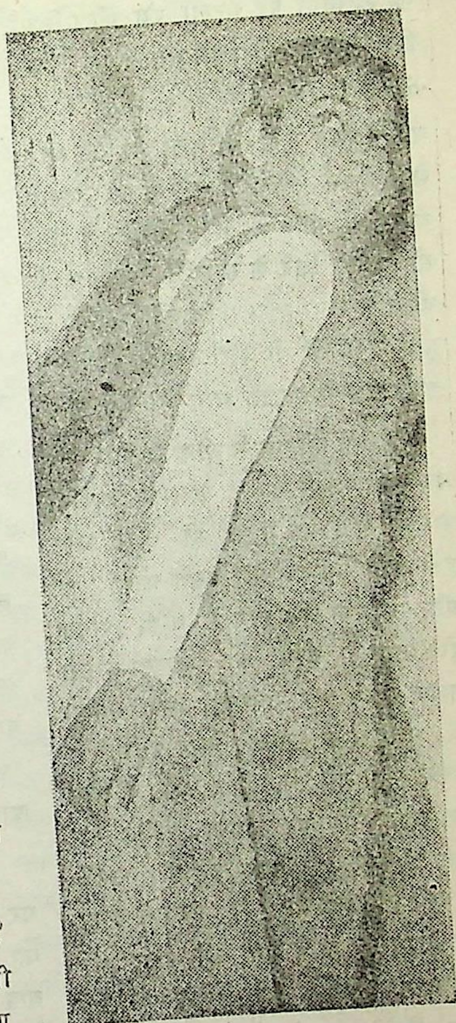
वे कभी नहीं लौटे

ऊषा सिनहा



अभी तक आपने पढ़ा कि ऋतु जीवन के प्रति इतनी संदिग्ध और अविश्वसानीय हो उठती है कि उसे लगता है कि वह केवल आत्महत्या द्वारा ही इन सब हालातों से छुटकारा पा सकती है। उसे युवावस्था के हसीन दिनों में एक साथी मिला था; लेकिन वह भटकाव की स्थिति में उससे भी अपने को जोड़ नहीं पाती; उसे अपनी इस पराजय का पूर्ण एहसास बहुत बाद में होता है और वह अपने को हीन भावनाओं से जकड़ी हुई महसूस करती है।

ऋतु आज सोच रही थी कि कहीं बाहर जाए; लेकिन इतना सोचने पर भी अभी तक वह तैयार नहीं हो पायी थी और बिना वजह पूरे घर में चहलकदमी के अन्दाज से घूम रही थी। अजीब बेचैनी उसके दिमाग में उमड़-घुमड़ रही थी। पुलिस के कुछ सिपाही आज सुबह ही कोठी के फाटक पर आ धमके और एक पोस्टर चिपका गये थे, जिस पर भाई का हुलिया दिया गया था। पुलिस वालों ने बताया 'हमें पता चला है कि वह एक लड़ी भगा कर ले गया है......। इसलिए उस पर एक लड़की भगा ले जाने का भी आरोप लग चुका है...... ।' पुलिस के जाने के बाद से मां निरन्तर बड़बड़ाए जा रही थी, 'कौन-सी लड़की भगा ले गया है...... आखिर न्याय भी कोई चीज है?...... यह पुलिसवाले बेईमान, कुत्ते जो दिल में आए बकने लगते हैं...... ।'



'पुलिस ऐसे ही करती है, मां? ऋतु ने कहा 'यह शायद उसकी पत्नी के बारे में कह रहे हैं; क्योंकि यह लोग नहीं जानते कि उसने मुकदमे के तुरन्त बाद विवाह कर लिया था। गधे...... पाजी......सुअर...... ।' मां गालियां निकालने लगीं...... ।' 'हमसे ईश्वर शायद बुरी तरह से नाराज हो गया है? जो हमारे पीछे पुलिस लगा दी है। ......यह पुलिस न लगती तब भी कोई बात थी—आह! अब तो हम जिन्दा ही मर जा चुके हैं...... ।'

वह चुपचाप मां का बड़बड़ाना सुनती रही......और खिड़की से बाहर देखती हुई अपनी महत्वहीनता को स्वीकारती रही।...... उसने देखा वृक्षों

की टहनियों पर चटखा रंग की पत्तियाँ निकल आयी थीं। अमलतास के गुच्छे पीले-होते जा रहे थे। वक्त अपनी नवीन रंगत में डूबता चला जा रहा था; लेकिन उन सबके अस्तित्व पर जड़ता व्याप्त हो गयी थी। हर प्रतीक्षा समान्य सी होकर सिर के ऊपर से निकल जाती थी और जमा हुआ संघर्ष वहीं फड़फड़ाता हुआ बरसाती लिजलिजे पतंगे की तरह कच्चे पंख बिखराता चला जा रहा था।

सामने चौराहे के बीच के गोल चक्र पर कुछ मजदूर मेहनत के साथ खुदायी कर रहे थे। अब यहाँ भी लाल और हरी बत्ती लग जायेगी, उसने सोचा...— और रात्रि के अन्धकार में थोड़ी रौनक हो जाएगी बत्ती का जलना-बुझना शायद उनमें एक नवीनता भर सकता है। मजदूरों के कमजोर चेहरे पसीने से तरबतर हो गये थे, फिर भी वे लोग पूरा जोर लगा कर फावड़ा जमीन पर 'हश् !' कहते हुए मार रहे थे। उनके पिचकी हड्डियों वाले मुँह पर नसें उभर कर बाहर को आने लगी थीं फिर भी वे जिस्म को बेरोक पटकते-झटकते हुए काम किये जा रहे थे।... क्या कभी उनसे किसी ने पूछा है कि वे सुखी हैं? शायद उन्होंने स्वयं अपने से भी यह प्रश्न न पूछा हो।... वे पूछ सकते ही नहीं कि अगर कोई उनसे पूछेगा भी तो अवश्य ही वे ठहाकर हँस पड़ेंगे और पूछने वाला खुद अपने को मूर्ख समझने लगेगा। उसे लगा दूसरी तरफ हम जैसे लोग खुद से सदा उलझते रहते हैं, इसी लिए शायद हम दिन-ब-दिन पागल की तरह बागी बनते जा रहे हैं...। हो सकता है किसी दिन हम खतरनाक पागल बन जाएँ और हमारी दर्दनाक मौत पर दुनिया तरस खाए।

दरवाजा खटका तो उसे लगा अवश्य ही मंगत माली होगा जिसे खन्दक खोदने के लिए ग्वाले से कहलवा भेजा था। उसने सोचा बाहर जाने से पहले वह खन्दक का काम खत्म करवा ले तो अच्छा होगा। खन्दक किस ढंग की बनवाई जाए? सोचते-सोचते वह हाल कमरे की ओर जाने को मुड़ी ही थी कि एक लड़की ने दरवाजे के पर्दे को हटाकर पहले थोड़ा झांककर अन्दर देखा फिर 'हलो मिस ऋतु!' कहती हुई कमरे में आ गई।...

'तुम!' उसे सहसा खुद की आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था; क्योंकि वह उस लड़की को एक लम्बे अरसे के बाद देख रही थी। उसे देखते ही उसकी स्मृति तेजी से पलट कर कालेज में चली गई। अपनी इस अनुभूति से उसको बेहद आनन्द मिला।

'शायद पहचाना नहीं,' निशा ने पूछा।

'तुम चाहे दूसरे जन्म में ही क्यों न मिलो तो भी मैं तुम्हें पहचान लूंगी'

कर ऋतु हँस पड़ी। 'सच' कहते निशा ने उसका हाथ पकड़ कर दबा या।

'बस से आई या गाड़ी से ?'

'बस से, आओ न ··· दरवाजे के पास री अटैची रक्खी है। मुन्ना भी साथ है। मोना आन्टी के यहां आई थीं, सोचा तुम्हारे यहां भी एक रात काटी जाये तभी मेरा यहां आना सार्थक हो जायेगा।'

'सच ?' कह कर ऋतु इस तरह हंसने लगी जैसे कभी कालेज के दिनों में हंसा करती थी। वह भूल गई कि कुछ देर पहले वह निराशा के बीच झूल रही थी। 'मां कहां है ?' निशा ने पूछा।

'शायद रसोईघर में होंगी' कह कर वह उसे हाल कमरे में ले आयी निशा ने देखा वह कमरा जो एक अरसा पहले काफी सजाधजा रहा करता था, अब वहां हर चीज पर लापरवाही और आलस छाई-सी लगती थी। धूल भरा फर्नीचर और सोफों का कपड़ा काफी गन्दा हो चुका था। उस समय छत पर एक मोतियों का फानूस भी लटका रहता था जिसे देख-देखकर ऋतु का बड़ा भाई उसकी कलात्मक कशिश, बयान किया करता था, आज उस फानूस के स्थान पर एक धुएँ से पीला हुआ, बल्ब लटक रहा था। पर्दे घिसकर फटने को हो रहे थे। एक कोने में उन दिनों दो आलमारियां रक्खी रहती थीं जिनमें बड़े भाई की असंख्य पुस्तकें करीने से सजी रहा करती थीं। वह कोना अब सूना था, जहाँ मकड़ियों ने वेशुमार जाले लगा लिए थे। कालीन की जगह केवल एक फटी पुरानी दरी बिछी थी। फर्श पर कागज और दूसरा कूड़ा कचरा फैला था। निशा को लगा जैसे उस परिवार में किसी दानव का प्रवेश हो गया था जिसने वहां की खुशहाली छीन कर मनहूसियत पैदा कर दी थी। वह सोफे पर बैठी हुई सामने दीवाल पर लगी उसके भाई की बनाई तस्वीर देखने लगी जिसके नीचे लिखा था आवारा गर्दों का चौराहा। तस्वीर में एक चौराहा था एक भूखी आवारा गाय थी। एक शरा ब सड़क के बीच वेहोश पड़ा था। घर से भागा एक युवक फुटपाथ पर घुटनों में सिर दिए हुए बैठा था। एक खाली रिक्शेवाला सवारी के लिए परेशान खड़ा सिगरेट फूंक रहा था और एक कार क्लब के अन्दर जा रही थी। एक आवारा कुत्ता शराबी का मुँह सूँघ रहा था। सड़क के किनारे खम्भे की रोशनी में असंख्य पतंगे मर-मर कर सड़क पर बिखरते जा रहे थे।

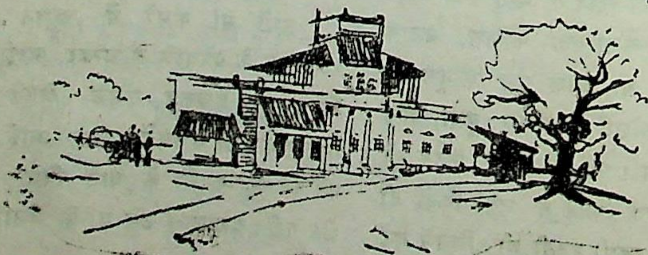
तभी मां कमरे में खुलने वाले रसोईघर के दरवाजे से अन्दर आई और निशा को देखकर उसके चेहरे पर मुस्कुराहट की सलवटें उभर आई। मां को नमस्ते कहने के बाद निशा फिर बैठ गई। दरअसल उसे मां के बैसाखियों

से चलने के कारण दुख महसूस होने लगा था। वह इस तरह चुप होकर मां को देखने लगी, जैसे दस मिनट का शोक प्रकट कर रही हो। उसने कहा 'ऋतु के खत से मुझे पता चल गया था कि आप गिर गईं हैं और आपको काफी तकलीफ हुई है।'

'माँ ने कहा' मुझे तो जो हुआ सो हुआ, अपाहित हो गई हूँ उम्र भर के लिए...न मरे हुए में न जिन्दा' में; लेकिन तुम्हारे घर में तीन मौतें हो जाने से मुझे गहरा सदमा पहुँचा है।' यह कहते हुए माँ का चेहरा दुख से सिकुड़-सा गया, लेकित ऋतु को लगा कि कमरे का वातावरण औपचारिकता से बोझिल बनता जा रहा था। वह जानती थी कि वे लोग अपनी ही समस्यायों में इतने उलझे हुए थे कि निशा के घर में घटने वाली तीन मौतों को उन लोगों ने हल्के गम के रूप में एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल फेंका था। मां ने फिर कहा 'तुम्हारे पिता और मां कितने भले आदमी थे...मेरा तो ख्याल है उन्होंने अपने जीवन में कभी भी किसी का दिल नहीं दुखाया होगा।' तभी निशा का भाई मुन्ना और पिंटू शोर मचाते हुए बाहर से दौड़ते अन्दर आए मुन्ना के आते ही पिंटू और चम्पाकली का लड़का दीपू इमली के गटारे उतारने चले गये थे। अब उन लोगों के पास इमली के ढेर सारे गटारे थे और वे कचर-कचर खाते हुए दूसरे दरवाजे से निकल कर बगीचे में चले गए थे।

कमरे में पुनः चुप्पी छा गई थी। ऐसा लग रहा था कि तीनों अपनी-अपनी असफलता पर शर्मिन्दा थीं। क्योंकि दुख उन लोगों के लिए एक पुरानी और घिसी-पिटी चीज बन चुका था। अपराधीपन का एहसास तीव्र हो गया था जिसकी यातना में वे खुद से दूर होते जा रहे थे।

अभी वे लोग बैठे ही थे कि चम्पाकली झाड़ू लिए ढीठों की तरह कमरे में आ गई और फिर इतनी तेजी से फर्श पर झाड़ू चलाने लगी कि धूल से पूरा कमरा भर गया। 'दस बजे झाड़ू...देना, कभी ग्यारह बजे और कभी तो दी ही नहीं जाती थी। धूल से बचने



लिए तीनों बाहर बरामदे में चली आईं।

मां ने धीमी आवाज में निशा को बताया यह चम्पाकली अब हमारे सिर चढ़कर रहती है। मैं अपाहिज हूँ। अधिक काम-काज नहीं कर सकती। यह लड़की इतने बड़े घर को बुहार नहीं सकती। पिछले एक महीने चम्पाकली के बीमार हो जाने पर इसे ही सफाई करनी पड़ी थी और यह बीमार पड़ गई थी···। तुम तो जानती ही हो···हमने इसके पिता के जमाने में हमेशा कमरे झाड़ने के लिए भंगिन रक्खी थी। लेकिन वह बुढ़िया पर साल सर्दी लग जाने से मर गई और दूसरे मेहतर पांच रुपये में काम करना नहीं चाहते हैं। जमाना जो खराब आ गया है—'हां तो तुम्हारे पिता और मां को क्या हुआ था?' भाई तो शायद एक्सीडेन्ट में मारा गया।'

पिता का हार्ट फेल हो गया और मां पिता के गम में चल बसीं···। निशा की आंखें भर आईं। कमरे में फिर सन्नाटा छा गया। ऋतु ने बात पलटने के लिए कहा 'मोना आन्टी तो ठीक है, न? उनके बच्चे का क्या हाल है? अब तो काफी बड़ा हो गया होगा···।'

'हां बहुत बातें करता है—काफी चंट है।' निशा ने रुमाल से आंखों में उमड़ आए आंसुओं को इस ढंग से साफ किया कि काजल न पुंछ जाए और फिर अपने हैण्डबैग में से शीशा निकाल कर··· मेकअप ठीक करने लगी। ऋतु रसोई घर में चाय-नाश्ता तयार करने चली गई और बच्चों ने निशा को बगीचे से सुर्ख गुलाबों का एक गुच्छा लाकर दिया। अपने जूड़े में फूल लगाने के बाद वह एकदम प्रफुल्लित सी दिखाई देने लगी।

उसने कहा 'यह कोठी बेहद खूबसूरत है। यहाँ की गरिमा मुझे बहुत सुख देती है। झाड़-झंखाड़ वृक्षों से घिरा होना, इसमें कितना सुकून भर देता है, लेकिन इसके बावजूद मुझे लगता है कि ऋतु इस मकान में रह कर एक पुराने वृक्ष की तरह हो गई है। आखिर खा-पीकर पेड़, पौधों और ऊँची दीवालों के बीच सुस्ताते रहना ही तो जीवन नहीं है। अगर वह इस तरह पड़ी रही तो मैं सच कहती हूँ वह एक दिन जीते जी मुर्दा बन जायगी और उसे स्वयं से खौफ आया करेगा। इतना ही नहीं लोग उसे देखकर डर जाया करेंगे।' अपने दार्शनिक विचार प्रगट करने के बाद निशा अहमियत से सीधी तन कर बैठ गई और माँ से पूछा—'क्यों मैंने ठीक कहा है, न?'

माँ उसके इस प्रश्न पर हँसने लगी और लगातार हँसती ही गई, हालांकि उसे दुखी होना चाहिए था। मां ने अंत में कहा 'तुम देखती रहो बेबी के पापा के लौटते ही हम इसके विवाह के लिए अखबार में विज्ञापन दे देंगे, क्योंकि सीधे तो अब हमारी सब रिश्ते-

दारी टूट गई है। तुम्हारी इस बात में जरूर सच्चाई है। लोग हमें देखकर अभी से ही खौफ खाने लगे हैं। मैंने एक-दो रिश्तेदारों के यहां खत लिखे थे लेकिन आज तक उनके कोई जवाब नहीं आए।' मां के ओंठ इतना कहते हुए दुख से कांपने लगे थे। मगर वह रोई नहीं।

'ऋतु को काम करना चाहिए। दुनियां में हजारों लड़के इसके साथ विवाह करने खुद ही चले आएँगे।' निशा ने विश्वास के साथ कहा।

चाय की ट्रे ऋतु बरामदे में ही ले आई। बच्चों को भी आवाज देकर बुलाया गया। चाय पीते हुए वे दोनों कालेज के दिनों की छोटी-मोटी बातें करती रहीं। ऋतु को लगा निशा यद्यपि अतीत की यादें काफी स्पष्ट तौर पर महसूस कर रही थी फिर भी बीता हुआ जमाना उसके लिए विशेष महत्व का नहीं रह गया था क्योंकि वह बार-बार कहती थी—

'तब हम कितनी बेवकूफ थीं। तब हम जरूरत से ज्यादा पागल थीं। तब हम जीवन को गम्भीर नजर से नहीं देख पाती थी।' इसके विपरीत ऋतु को लग रहा था अगर अतीत की स्थिति अब भी पैदा हो जाय तो वह उसी तरह सोचेगी जैसा कि अब सोच रही थी। निशा का भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण था लेकिन वह भविष्य को निराशा से देखती थी। दोनों के लिए दोनों बातें उल्टी थीं। अपने अतीत के दिनों में वह भविष्य को आशा से देखा करती थी और यह निशा निराशा और बेचैनी से। दोनों दो अलग रास्तों पर चलती हुई बदल गईं थीं।

निशा ने कहा 'मुझे विवाह आदि की कभी चिन्ता नहीं हुई। मैं समझती हूँ यह एक संयोग की बात है। जिसके साथ होना है होगा ही। मोना आन्टी ने मुझे लड़का दिखाने बुलाया था और मुझे पसन्द नहीं आया। मैंने एक ही नजर में समझ लिया कि लड़का अपने वेतन के बारे में झूठ बोलता है। उसकी कलाई पर घड़ी नहीं थी। पैन्ट…घिसी हुई जीन की थी। जूते पुराने और बिना पालिश के थे। जिस्म हड्डियों का ढांचा था कहने लगा, मैं आठ सौ मासिक कमाता हूँ। लेकिन में समझती हूँ संयोग हुआ तो यह फटेहाल आदमी ही मेरा पति बन जायेगा।'

'मुझे संयोग में विश्वास नहीं है। मैं समझती हूँ यह पुराने लोगों ने लड़कियों को कोढ़ी, बूढ़े……अपाहिज मर्दों के साथ बांधने के बाद इस फिलासफी को ईजाद किया होगा। सयोग का नाम लेकर वे लड़कियों को फुसला देते थे।'

'इसका मतलब है तुम अवश्य जिसे चाहोगी उसके साथ विवाह कर लोगी……..।' निशा ने हँसते हुए कहा।

'कह नहीं सकती···। हार-जीत तो जीवन के हर पक्ष में चलती है······। मैं नहीं जानती मैं किसे जीत लूँगी या कौन मुझे जीत लेगा। यह सब हालात के वस की बातें हैं। ···हमारे घर में जो कुछ घटा है, उसे मैं तुम्हें खतों में लिख ही चुकी हूँ। तुम देख रही हो हम परि-स्थितियों के हाथों किस तहर चलते जा रहे हैं।'

'खैर तुम मेरे साथ दिल्ली चलो मैं तुम्हें नौकरी दिलवा दूँगी। उसके बाद देखना कितने सुन्दर संयोग तैयार होने लगें गे तुम्हें खुद हैरानी होगी। तब तुम शायद महसूसो गी कि तुम हालात के हाथों का खिलौना नहीं थी, बल्कि हालात को तुमने ही पंगु बना कर कैद कर रक्खा था।'

'मां निशा की इस बात पर एकाएक प्रसन्न हो गई। उसने कहा तुम्हारा बहुत बड़ा एहसान होगा अगर तुम इसे नौकरी पर लगा दोगी···। हमारे गिरते हुए परिवार के लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात क्या हो सकती······ है······।'

दूसरे दिन ऋतु भी निशा के साथ दिल्ली के लिए रवाना हो गयी। दिल्ली पहुँच कर ऋतु ने देखा निशा एक बड़े से दुमंजिले मकान में रहती थी जो एक बाजार की सड़क के किनारे बना हुआ था। यद्यपि उसके मकान के चारों ओर गन्दे और तंग मकान थे लेकिन उसका मकान नया और साफ-सुथरा था। नीचे काफी बड़ा आंगन था जिसमें एक मुर्गियों का पिंजरा बना था और अमरूद के कुछ वृक्ष लगाए गए थे······। उसके पिता ने यह मकान अपने हर आराम को नजर में रख कर बनवाया था। लेकिन मकान तैयार होने के कुछ दिन बाद ही वे चल बसे थे और फिर एक के बाद एक दो मौतें और उस घर में हुई थीं···। अब केवल निशा और उसका दस बरस का भाई मुन्ना रह गया था···। मकान के बाहर बाजार की सड़क पर सारे दिन भीड़ चलती रहती थी। साथ-साथ सटे मकानों में मध्यम श्रेणी के लोग बिलों में से झांकने वाले परिन्दों की तरह मुँह निकाले बैठे रहते थे। दिन भर सड़क के दोनों ओर की नालियों में लोग पेशाब करते रहते थे······जहां से गुजरते हुए लोग वहां की सड़ान्ध को जबरदस्ती सूंघते हुए चुपचाप गुजर जाते थे···। शिकायत का इरादा कभी भी किसी के चेहरे पर नहीं उभरता था! क्योंकि सभी ने नालियों में पेशाब करने को एक अधिकार समझ लिया था जो परम्परा में खुद-ब-खुद पनपता चला जा रहा था।

निशा ने अपने घर के प्रत्येक कमरे में घुमाते हुये कहा' तुम चाहो तो यहां हमेशा ही रह सकती हो ···। क्योंकि मैं तुम्हें अपने से अलग नहीं मानती हूं। तुम्हारे यहां आ जाने से मुझे भी बेहद अच्छा लगने लगेगा। तुम शायद अनुमान

नहीं लगा सकतीं इस घर में मैं किस हालत में रहती हूँ। हर जगह, हर कोने, हर ईंट में मुझे मेरे मां, बाप, भाई की शक्लें दिखाई देती रहती हैं और मैं दुख से पागल बन जाती हूँ। उन्होंने हमारे सुख की खातिर इसे बनवाया था।' इतना कहते-कहते निशा रोने लगी ....। उसने कहा 'मां! मां तुम मुझे क्यों छोड़ गयी।' उसे देख कर मुन्ना भी रोने लगा। ऋतु भौंचक्की-सी रह गई ...। उस वक्त उसे निशा का रोना एकदम अच्छा न लगा ...। उसने कहा 'इससे क्या फायदा! यह ठीक है, गम तो अब तुम्हारी छाती में पत्थर की तरह पड़ गया है ...। पर वे लौटेंगे क्या?'...

'तुम नहीं जानती बेबी, मौत का दुख कितना कष्टदायक होता है आह! मैं अपने को उनके बिना कितनी अकेली और बेबस पाती हूँ। कभी-कभी मन होता है कि आत्महत्या कर लूं; लेकिन मैं जीती हूँ केवल मुन्ना के लिये। ... मेरा मुन्ना मेरा भाई ...।' कह कर उसने मुन्ना को छाती से सटा कर प्यार किया। ऋतु को निशा उस वक्त बेहद अच्छी और प्यारी लड़की लगी। उसने महसूस किया कि वह भी निशा की तरह अभागी थी। अन्तर केवल इतना था कि मां, बाप भाइयों के रहते हुए भी वह नितान्त अकेली और असहाय थी। दोनों के हिस्से में एक ही तकदीर आई थी। उसे याद आया निशा ने भी किसी जमाने में बड़े-बड़े सपने देखे थे। लेकिन दोनों ही हालात के आगे पराजित हो गयीं थीं।

निशा ने तुरन्त ही आंसू पोंछ डाले थे। उसने ऋतु के उदास मुरझाये चेहरे की ओर देख कर कहा—'तुम घबरा गईं ... ? हँसो बेबी, ... हर रोने के बाद हँसना जरूरी होता है।' निशा के बदलते स्वभाव पर वह केवल आश्चर्य से आंखें फाड़े उसे देखती रही। ... निशा ने उसके गले में बाहें डाल कर कहा 'तुम एकदम भोली हो, हसीन हो ... और क्या कहूँ बेबी तुम बेहद अच्छी हो तुम्हें जो पायेगा अपने भाग्य पर गर्व करेगा ...।'

'छोड़ो'! ऋतु ने अनमने भाव से कहा।

'ठीक है मत सुनो; लेकिन एक बात कहूँ, इस उदासी को दूर करना है तो प्यार करो। ... किसी को अपना बना लो।'

'चुप रहो! यह खामख्वाह की बातें हैं,' 'ऋतु को हँसी आ गयी।

'तुम कितनी पत्थर हो। ... क्या तुम्हारे पास भावनाएँ नहीं हैं? निशा ने पूछा।'

'आखिर तुम क्या चाहती हो ... ?'

'तुम सुखी हो जाओ बस ...।'

'तुम बेवकूफ हो ...।'

तुम गलत सोचती हो, लेकिन मैं एक युवक को बेहद चाहती हूँ। तुम्हें हैरान नहीं होना चाहिए···तुम सोच नहीं सकती कि मैं कितनी सुखी हूँ····निश्चय ही मेरा भविष्य बेहद सुखद है···।'

ऋतु खामोश दृष्टि से निशा को देखती रही। उसकी बातों ने उसे भीतर-बाहर से बुरी तरह से झझोंड़ दिया था···। उसे अपना एकांकीपन बुरी तरह से खलने लगा था। उसने सोचा वास्तव में वह गलत से गलत बनती जा रही थी और अपनी किसी भी गलती का एहसास उसे कभी भी नहीं हुआ था।

निशा शाम का चाय नाश्ता तैयार करने रसोईघर में चली गई थी। उसने सुना निशा कोई गीत गाते हुए काम में जुट गई थी···। 'मैं जानती हूँ·· तुम कभी लौटोगे नहीं···फिर····फिर इन्तजार क्यों···?·· तुम प्यार नहीं करोगे··फिर ···फिर तुम्हारी याद क्यों? ···इन्तजार क्यों···?' उसकी आवाज गजब की थी। ऋतु को याद आया उसकी आवाज पर मोहित होकर एक बार उनके कालेज की प्रिंसिपल ने कहा था 'निशा तो एक दिन रेडियो आर्टिस्ट बनेगी···।' मगर आज वह कुछ भी नहीं थी। उसकी आवाज कमरों की निर्जीव दीवालों से टकरा कर मरती चली जा रही थी।

निशा ने खाने की मेज पर एक भूरे रँग की केतली में चाय रख कर टी-कोजी से उसे ढँक दिया था। वह अभी भी उसी गीत की पंक्तियां गुन-गुनाते हुए सेंके हुए टोस्टों पर मक्खन लगा रही थी।

ऋतु चाय पीने लगी थी। निशा ने एक तश्तरी में टोस्ट और अण्डे का आमलेट उसके आगे खिसका दिया।

'मेरी मुर्गियां खूब अण्डे देती हैं और हम दोनों भाई-बहन खूब खाते हैं। देखो तभी तो इतनी मोटी हूँ और तुम कितनी दुबली हो····मेरा ख्याल है तुम जितने दिन यहां रहो खूब खाओ, सेहत बनाओ, सुबह हम लोग सैर करने जाया करेंगे। रात को कोई-न-कोई मुर्गी, चूजा खायेंगे, सुबह दूध, मक्खन उबले हुए अण्डे, अहा! मजा आ जाएगा···। निशा जोर से हंस पड़ी। लेकिन वह चुप-चुप-सी मुस्कुराती रही।

'तुम प्यार करो—समझीं?' निशा ने शरारत से उसे निहारते हुए कहा।

'किससे! ऋतु को लगा वह बेवकूफ बनती जा रही थी······। न जाने क्यों उसकी आंखों में आंसू आ गए।

'एक लड़का है—मेरा ख्याल है, तुम उसे पसन्द करोगी और वह तुम्हें···।

'बकवास है !' ऋतु ने खीझ कर कहा—'आखिर यह सब कहने से तुम्हारा मतलब क्या है ?'

'खास मतलब नहीं है', निशा ने टोस्ट को दांतों से बड़ी नजाकत के साथ कुतरते हुए कहा, 'मेरा मतलब है इस उम्र में तुम किसी को चाह कर ही सुख पा सकती हो। तुम उदास हो। यही अभाव एक विशेष कारण है…।'

'शायद।' ऋतु ने कहा 'लेकिन मैं इतनी जल्दबाज नहीं हूँ…।'

'क्योंकि तुमने आज तक किसी को चाहा नहीं है इसीलिए इतनी उदासीन हो…।'

'ऐसी बात नहीं है, ऋतु ने कुछ नाराजगी से कहा,' दरअसल मैं एकदम किसी पुरुष पर विश्वास नहीं कर पाती हूँ।'

'तुम्हें विश्वास करना होगा' 'निशा' ने इन शब्दों को इतनी जोर से कहा कि ऋतु चौंक गई। निशा भी अपने चिल्लाने पर शर्मिन्दा-सी हो गई।

'तुम मुझे गुस्सा दिला रही हो।' निशा की आवाज धीमी हो गई थी, उसने कहा—'मैं समझती हूँ किसी-न-किसी दिन तुम अवश्य ही किसी एक मर्द पर विश्वास करोगी। क्योंकि विश्वास हमारे जन्म और मृत्यु के बीच एक बड़ी पवित्र चीज है…।'

'तुम किसी को चाहती हो ?' ऋतु ने पूछा।'

'हां, एक लड़के को मैं बेहद चाहती हूँ।'

'वह तुमसे शादी करेगा ?'

'कभी पूछा नहीं।'

'मान लो वह तुमसे शादी न करे ?'

'मुझे लगता है वह करेगा…क्योंकि वह मुझे बेहद चाहता है।

'तुम्हें विश्वास है ?'

'हां शायद तुम पूछोगी, मुझे खुद पर विश्वास है ?'

'हो सकता है कभी खुद पर भी अविश्वास हो जाए।'

'तुम हमेशा पराजय खाओगी, बेबी…तुम जीने का अर्थ नहीं समझ रही हो। कान खोल कर सुन लो यदि तुम किसी पर भी विश्वास नहीं करोगी तो अवश्य ही एक दिन तुम्हारे आगे डूब मरने की नौबत आ जायेगी।'

'कैसे उटपटांग विचार हैं, तुम्हारे, ऋतु ने खिन्नता से हँसते हुए कहा।

'माना कि विश्वास बहुत बड़ी चीज है लेकिन मैं डूबकर ही मरूँगी यह तुमने कैसे जाना ?' निशा ने देखा ऋतु का चेहरा लाल हो गया था। इसलिए बात पलटने के लिए वह हो-हो कर हँसने लगी। फिर दोनों खामोश हो गईं।

'रात को तुम क्या खाओगी ?' निशा ने पूछा।

'जो तुम खिलाओगी, प्यार के

सिवा 'इस बात पर दोनों ही खिल-खिला कर हँस पड़ीं।

'आखिर तुम्हें भी प्यार के नाम पर हँसी आ गई' 'निशा ने कहा।

'हां यह डिश तुमने ईजाद की है... कम-से-कम मेरे लिए।'

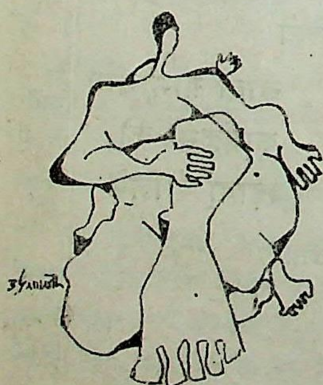
'मैंने नहीं ईश्वर ने,' कह कर निशा गम्भीर-सी हो गई।

(क्रमशः)

अगले अंक में ऋतु के जीवन में प्यार का आगमन हुआ या नहीं ? क्या उसे अपने जीवन की यातनामयी परिस्थितियों से उबर कर एक सुखपूर्ण जीवन दिखाई दिया ?

वही मर्द वही औरत

राजेश



कमरे के ठंडे-सीले फर्श पर वह फिर एक सामान की तरह पड़ी थी। इस बार उसे अपनी असहायता पर ताज्जुब नहीं हुआ। वह उस नरक के बारे में सोच रही थी, जिसके बीच से होकर उसे गुजरना ही होगा—भविष्य अगर कोई है, तो वह अपने को लत्ता कर देने में ही है।

आधी रात को जूतों की परे होती हुई आवाज उसने दूसरी बार आज सुनी है, लेकिन उसे लगता है कि यह आवाज अपने सभी खौफनाक संकेतों के साथ अक्सर ही उसके दिमाग में बजती रही है। ......वह जानती थी कि यह होगा, शायद एक बार और आखिरी बार—और फिर उसकी शिरायें ढीली पड़ जायेंगी, भेजा पिचक कर एक पिलपिले लौंदें में बदल जायेगा और उसको लिजलिजी नंगी

आदमकद तस्वीर, इस सीले कमरे की दीवारों से चिपक जायेगी, पैवस्त हो जायेगी ।...... उसकी जांघें झुलझुलाती रहेंगी, घुटते थरथराते रहेंगे और वह अपनी टाँगें हवा में चौड़ी किये आह्वान करती रहेगी—अपने नरक के भीतर सारी दुनियाँ को जीने के लिये तत्पर ।

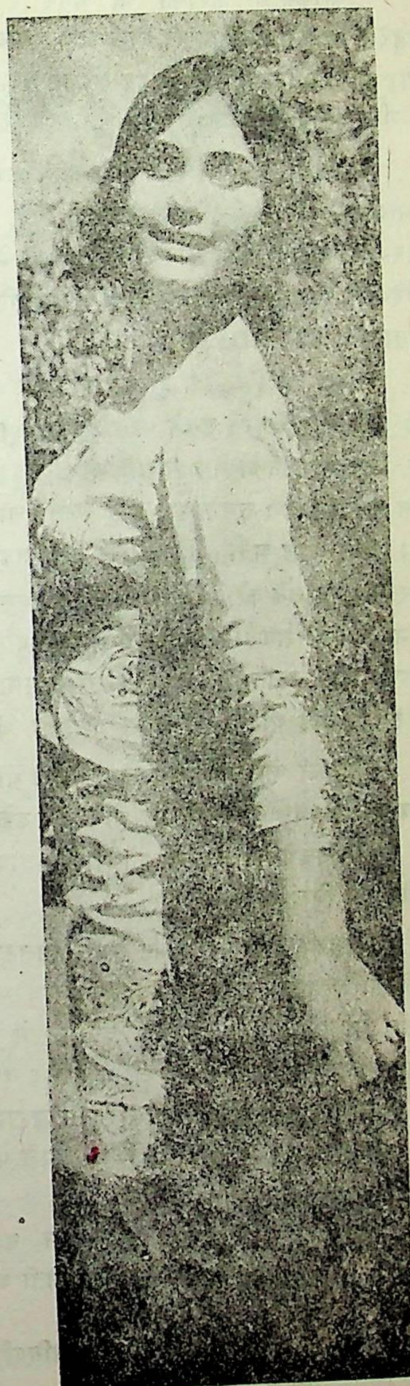
नफरत । नहीं नफरत नहीं निर्णय, नफरत नहीं विवशता, नफरत नहीं नियति, होनी, जिन्दगी या कुछ भी, पर नफरत नहीं । यह कभी थी । कभी हुई थी, जब उसने इसके ताप को सहा था, इसकी चिन्गारी से उसके रोंयें रोंयें दंग रह गये थे और एक झटके से उसने सारी दीवारें गिराकर बेसाख्ता जिन्दगी को पुकारा था । लेकिन वह पुकार नींद की थी । ख्यालों में चलती, भागती, छलांगें लगाती और लड़खड़ाती हुई पुकार । उसके सामने एक-के-बाद एक चेहरे गुजरते गये—

'अजीब घिनौनी जिन्दगी है आपकी । एकाएक यकीन नहीं आता ।'

'वक्त की बात है । धीरे-धीरे अक्ल आ जायेगी ।'

'नहीं, आपको बेचने पैसा कमाने ऐसा कैसे होगा ?'

'उसके साथ ही चलने दो । जरा बचाकर अपने जी की भी कुछ करो न । दुनियाँ कितनी बड़ी है, तुम इधर देखो तो ।



लेकिन ये शरीफों के चेहरे हैं, साफ दुरुस्त पर अन्दर-अन्दर मुड़े हुये चेहरे। जिनकी जिम्मेदारी सिर्फ अँधेरे तक है। ये बिल्ली की तरह दबे पाँव आते हैं और दुत्कार देने पर उसी तरह कालर सीधा करते हुये लौट जाते हैं। उसे इन चेहरों से भी नफरत हो गई।

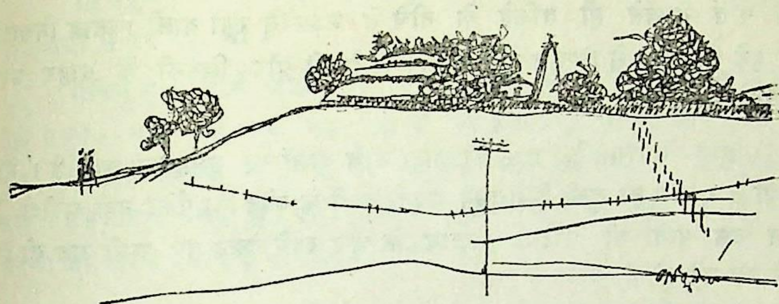
बहरहाल, ये चेहरे एक-एक करके कुछ अर्से के लिये एक शुभचिन्तक, एक समाजसेवी के बतौर तब दाखिल हुये, जब वह बेतरह छटपटा रही थी। उसे बार-बार तमाचा पड़ा और उसकी आँखों में झिनमिला आई रोशनी की शहतीर धीरे-धीरे मरती रही और ख्यालों में चलती हुई पुकार पर रक्खा पत्थर और भारी होता गया और भारी!

अब वह फिर ठस हो गई थी और अपने घर को सलाखों के बाहर से कट गई थी। वे चेहरे उससे इस तरह जुदा हो गये थे कि उन्हे पहचानना मुश्किल था, फिर भी उनकी नेक सलाहें और जादुई उम्मीद के भारी भारी चिराग उसके पास बच रहे थे। उसने कुछ शुरू करना चाहा। कुछ शुरू करना चाहा, नये सिरे से। उसने अपने अतीत पर हजारों ताले जड़ दिये और अपने पति की आँखों को फिर से पहचानने की कोशिश की। हो सकता है। हो सकता है, वह सब मात्र उसका वहम हो। हो सकता है, वह सब मात्र नियति का खेल हो और उसने अपने पति को बड़प्पन को पहचाना न हो। वह उसके पास आना चाहती थी और उसकी उँचाई, अगर व उंचाई थी, में खो जाना चाहती थी।

लेकिन वह शुरुआत कितनी छोटी थी। वह एक झूठ थी। उसके नीचे वही बदबूदार जिन्दगी थी, जो उसे धीरे-धीरे ढकेलकर उस नतीजे की तरफ ले जा रही थी, जिससे बचने की हरचन्द कोशिश के बाद, अब वह एक कटे हुए कुंदे की तरह जमीन पर बिछ चुकी थी।

उसकी दुनियाँ सिमट कर बिलकुल छोटी हो चुकी थी। एक तिलस्मी कमरे की तरह उसको हर दीवार पर अंधेरे-काले परदे खिच चुके थे। उसने यकीन करना चाहा था कि उसकी दुनियाँ में उसका पति भी शामिल है। लेकिन जब लालटेन की बत्ती नीचे सरका दी गई और एक आवाज उसकी रीढ़ की हड्डी में एक चिपचिपी ठंडी सलाख की तरह सरसराई—'तुम मुझसे ऊब गई हो?'—तो उसे आशंका हुई कि दीवारों के काले पर्दे सरक कर उसे लपेटते आ रहे हैं अकेली हो रही है।

ऐसा ही बिलकुल पहले हुआ था।—जैसे अब तक एक लाश को सुनहरे पैरहन से सजाकर वह अपने कंधों पर ढोती आई थी, लेकिन अब अंधेरे के फ्लैश ने



असलियत का मुँह खोलकर उसे जड़ बना दिया था। हाँ, पहले ऐसा ही हुआ था। लालटेन की बाती इसी तरह नीचे सरका दी गई थी और पति ने ऊब का एक दर्शन छेड़ा था······

पहले की बात होती, तो जवाब में वह पूँछती—'तुम मुझसे ऊब गये हो ?''

'नहीं, मैं नहीं तुम ऊब गयी हो मेरे शरीर से।' पति ने जवाब दिया होता, वह अंदाज कर सकती है। लेकिन इस बार कुछ नहीं। कुछ नहीं।

पहले कई बार टोकने पर भी न तो वह लालटेन बुझाता और न मद्धिम ही करता और उसके हाथ चलने लगते। उसे चिढ़ होती। तब भी एक ही फूँक से वह लालटेन बुझा देती। केरोसिन की तीखी गंध। वह फो-फों करती, पर तभी उसकी छातियों पर रगड़ तेज हो जाती।—लेकिन एक दिन यह सिलसिला टूट गया। उसने पहले लालटेन बुझाई और ब्लाउज के बटनों से खेलने लगा।'—तुम मुझसे ऊब गई हो—मेरे शरीर से ?' उसने इसी तरह शुरू किया था।

'चाँद आज रात तुम्हारे आधे शरीर पर रोशनी फेंक रहा है। तुमने अभी सुना, अँधेरे में अंदर कुछ और होता है और चाँदनी में कुछ और। आज तुम बिलकुल सपाट लेटो। तकिया निकाल दो, उसी तरह पैर सीधे कर लो।'

उसने पिछली बार कहा था। उससे पहले वह कुछ उत्तेजक एलबम और अश्लील किताबें बटोर लाया था। इस सबका एक सिलसिला, एक नियम उसने तैयार किया था। पहले वे करतब पढ़े जाते, जिनमें महज खुले हुए लाल-लाल जलते अंग होते थे। फिर उन्हीं के अनुरूप एलबम से तस्वीरें चुनकर उन्हें वे अपने शरीर से महसूस करने का प्रयत्न करते।

लेकिन इस बार यह सिलसिला कायम नहीं हो पाया। लैंप की बत्ती तेज करके पति ने जैसे ही तकिये के नीचे से भड़कीले रंगों वाली किताब निकाली, उसने बड़े आहिस्ता से किताब पति के हाथ से ले ली और खिड़की के बाहर अंधेरे में उछाल दी।

'तुम्हें मालूम है, छः सेर आटा नीचे वालों का उधार आ चुका है।' मेरी धोतियां तार-तार हो चुकी हैं। तुमने अपनी दाढ़ी के ब्लेड का पैकेट नहीं खरीदा है, लेकिन दस पन्ने की घटिया किताब के पाँच रुपये देकर तुम आधी रात को प्रेत जगाने आ गये हो।'

× × ×

लेकिन हर बार ऐसा नहीं हो पाता। वह सतर्क रहती अपने ढंग से चीजों को मोड़ देने की कोशिश करती, पर उसके अनजाने ही कोई पिछला दिन उसके सामने उतर आता। वह पिछला दिन ज्यों का त्यों नंगा-सा या कुछ-कुछ अपना चेहरा बदल कर…

'तुम यूंही गुमसुम रहोगी? कोई सुख नहीं, घर में—बाहर इतने लोग हैं, कभी तुमने दिलचस्पी ली किसी में?'

'हां ली।'

'कब? कभी नहीं।'

'जिस शाम तुमने मुझे कंधे से पकड़ बताया था कि तुम्हारी नौकरी लग गई है। याद है, तब सबसे पहले मैंने तुम्हारा कोट उतारा था, फिर जूते, फिर जुराबें।'

× × ×

'तुम चाहो तो सब कुछ बदल सकता है—यह बिस्तर यह घर।'

'सब कुछ। पर तुम नहीं, मेरे चाहने पर भी नहीं।'

× × ×

पिछली बार उसने इसे समझा नहीं था और धीरे-धीरे उस पर वह नशा हावी होता गया था—शरीर का नशा। उसने शादी के कई साल बाद फिर अपने भीतर की आग को पहचानना सीखा था। अपने पति के साथ उन नंगी कहानियों में वह तब बेहद दिलचस्पी लेती और उसका मन उस रात के लिये चुने जाने वाले संयोग के किसी खास अन्दाज के प्रति उत्सुकता से भरा रहता। लैंप की रोशनी तेज करके वे नंगी कहानियां पढ़ते और आसनों की तस्वीरें चुनते और कभी-कभी वह दौर पूरा होने के पहले ही उत्तेजना से पागल होकर, बेतहाशा वह अपने कपड़े उतारने लगती।

वह समूची-की-समूची एक दूसरी दुनियां में समा गई थी, चाहे वह दुनियां आशंकाओं से परे नहीं थी।

लेकिन कुछ चीजें होती हैं, जिनका एक असर होता है, आप उससे बच नहीं सकते। चाहे वह एक नशा हो या एक सपना ही हो, जो आप पर हावी हो गया हो और जिसके बारे में निश्चयपूर्वक आप कह सकते हों कि अगली सुबह आपको उसे उतार फेंकना है। ऐसी ही अंधी भूख और तीखा नशा है शरीर का; उसका जो आपके भीतर है या जिसके भीतर आप हैं।

उसके पति को इसकी जानकारी थी कि उस नशे को भरपूर भड़काकर आदमी को बेतहाशा अंधेरी गली में भगाया जा सकता है। उसके पति का निश्चित उद्देश्य संज्ञाहीनता की हद तक ले जानेवाली शारीरिक भूख के खौलते लावे को उसके भीतर दहकाकर उसे उस अँधेरी गली में ठेल देना है यह ज्ञान इस बार एक दिन उसके भीतर एक झटके से जल उठा :—

'ओह कितनी गर्मी है, जल्दी खत्म करो।'

'गर्मी है और अँधेरा है' उसने छाया की तरह कांपते और हाँफते हुये कहा—'और तुम एक ही घर एक ही बिस्तर और (एक ही) आदमी से थक गई हो तुम्हें स्वाद नहीं आता।'

साथ ही उसके अन्दर एक पिघलती हुई नशीली चीज उतर गई। उसे लगा उन दोनों के बीच गुजरे दिनों का एक चमचमाता शीशा झनाक से आ गिरा—

'स्वाद।' उस शीशे को हजार शक्लों में यह शब्द बिंध गया। तब उसने कहा था, उसे याद आता रहा—'ऐसी ही किसी अँधेरी रात को जानती हो, मैं कभी 'क' को इस कमरे में दाखिल कर दूंगा। तुम्हें बाद में पता लगेगा और तुम ताज्जुब के साथ एक ताजगी और नये स्वाद को महसूस करोगी।

'इससे फायदा ?' उसकी पीठ में एक सन्नाटा सरसराया था।

'तुम्हें नया स्वाद मिले इतना क्या काफी नहीं है।'

'स्वाद !' वह हँसी थी एक लम्बी हँसी—देर तक हँसती रही थी।

लेकिन आज वह बिस्तर पर उठ बैठी। उसने पति के कंधों को सख्ती से दबोचकर झकझोरा—'तुम मुझसे पेशा करवाना चाहते हो ?' उसने बेसाख्ता चिल्लाकर अत्यन्त कठोरता से पूँछा। पर अगले ही क्षण वह बिखर गई।' तुम आखिर क्या चाहते हो ? आखिर क्या ?'

वह आँधी हो गई थी और उसके कंधे जख्मी जानवर की तरह काँप रहे थे।

× × ×

वह एकाएक पीछे मुड़ आई—उस घर और उस कमरे की ओर जहाँ उसने पहली बार कदम रखा था। सात वर्ष पीछे। वे शुरू से आज तक चलते आये दिन थे। समय के वे फूहड़ और बेमानी टुकड़े अब जब एकाएक जिन्दा होने लगे तो उसे लगा कि वह कितनी असहाय है और कितनी अकेली। हवा के बेहिसाब भारी टुकड़े उसके भविष्य पर जम गये हैं और वह इंच-दर-इंच पीछे सरकने को मजबूर है।

वही घर, वही घर। पहली ही रात के टूटते-टूटते सुबह के झुटपुटे में जब उसका पति थक कर सो गया था तो वह धीरे से उठी थी और नंगे पांव घर के कोने-कोने को झाँका था। चार कमरों का एक पुराना-सा मकान। शादी के घर में सब कुछ अस्तव्यस्त और उलट-पुलट! कमरे में रेल के तीसरे डिब्बे की तरह मेहमान और उमस लेकिन उस कच्ची सुबह के पहले लम्हों में कमरों का धीरे-धीरे मिटता अंधेरा उसे बहुत सम्मोहक लगा था। वह ठंडे आंगन में खड़ी रही थी।

वे शुरू के तेजी से बीतते दिन और उसके बीच एक छाया। हां, वह मात्र छाया ही थी। उसका पति उसे मांजी पुकारता था और वह भी। उसका चेहरा घना, काला, चिपटा हुआ था और उसमें सोये झांकने से अनगिनित उसकी झूलती सलवटें आंखों को परेशान कर देती थीं। वह चुप रहती और हमेशा घर के छोटे-बड़े काम उसके साथ रहते।

लेकिन रात ग्यारह के बाद कभी-कभी मांजी उसके पति को धीरे से पुकारतीं 'भैया।' और दूसरे कमरे में कुछ देर धीरे-धीरे फुसफुसाहट होती और फिर पति की आवाज तेज होती जाती……'मांजी, तुमसे क्या मतलब ?'

'तुम बहुत न बोलो।'

'तुम्हारी अक्ल कितनी है ?'

'मैं सब सोचता समझता हूँ।'

वह तमतमाया हुआ अपने कमरे में लौट आता। तब उसकी कुछ भी पूछने की हिम्मत न होती। अपनी अजनबीयत उसे खलती रहती।

एक महीने बाद ही उसका पति पुड़िया बंधवाकर हर दूसरे-तीसरे दाल-चावल लाने लगा और यह ढर्रा खुलते देर न लगी। सुबह से रात तक

उसके पति को पूछने बेहिसाब लोग आते। वे बाहरी कमरे में मिलते शुरू में उनकी आवाजें धीमी होती थीं, पर बाद में वे आवाजें गर्म होती गईं। जो भीतर के कमरों तक सरक आती थी—अपने अर्थ खोल जाती थी। उसके जेवरों का पूरा सेट पति के किसी मित्र की बहिन की शादी में गया था और फिर नहीं लौटा था।

पति की सहजता नष्ट होती जा रही थी और चेहरा खिचा-खिचा रहने लगा था। एक रात उसकी प्रश्नवाचक आँखों का सामना वह नहीं कर सका और बताया—वह कर्जे से लदा हुआ है, अगर सिर्फ ब्याज ही देता रहे तो आधी तनख्वाह उसी में डूबती रहेगी।

'तीन साल पहले तीस वर्ष की बहन की शादी कर्जे से की। फिर माँजी की इच्छा के लिये यह शादी भी कर ही ली।'

'मां की सिर्फ ?'

'लेकिन नहीं, सिर्फ मांजी की इच्छा……।' उसने कुछ कहना चाहा, पर सकुचा गया।

वह भीतर से तरल हो आई। पति के बालों में उँगली फंसा उसने कहा—'सब ठीक होगा……सब ठीक हो जायेगा।'

उसने नई बहू की शर्म उतार कर आठ-आठ आने की सिलाई मांगी और छोटी-छोटी ट्यूशनें ढूँढ़ी। सत्तर-अस्सी रुपये महीने में वह बटोर लाती। कुछ उम्मीद बँधी। लेकिन चीजों बनना नहीं था। उसका पति छँटनी में आ गया—एक-एक रक्खी ईंट धसक गई। उसे '६' की लड़ाई की एमरजेन्सी में एक बड़ी कन्सट्रक्शन फर्म में नौकरी मिली थी, लेकिन काम कम होने पर चार साल की क्लर्की के बाद, वह अपने पद से हटा दिया गया।

कितने पहाड़ से दिन थे। घर की चीजें एक-एक करके बिकती रहीं और एक दिन जब वह बाजार से लौटी, तो अपनी सिलाई मशीन को नदारद पाया। कमरे के बीचो-बीच उसकी टांगों का लहू जम गया और माँजी के सामने वह जी तोड़ चीखी। लेकिन उसके सामने ढेर सारी काली सलवटें आ गईं बस।

कितनी-कितनी धूल और फिर एक चेहरा! चेहरा उसके सामने है—सामने आता है। उसके कंधे पकड़े गये हैं और आंखें सर्र-सर्र सब कहे जाती हैं—पति को फिर नौकरी मिल गई। नौकरी! रोजगार! बस इतना बहुत है।

उसे याद आता रहता है……वह अन्दर से धड़धड़ा रही थी और उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह खड़ी रहे या बैठे या पति को देखे-समझे-सुने।

पति में बेहद उत्साह था। वह बराबर बोलता गया और हिसाब लिखता गया—तनख्वाह १३७/-, मकान किराया ३२, गेहूं ३५, दाल १५, चावल १०, सूद……। लेकिन-लेकिन फिर भी कम। सौ रुपये कम। वह पन्ने फाड़ता रहा और लिखता रहा—मकान ३२, गेहूं ३५……।

वह आंख बन्द कर खाट पर पड़ रहा था। उदास और हारा हुआ। लेकिन वह फिर उठा था और तब उसने एक नये विश्वास के साथ बताया था कि वह इस नौकरी के साथ कुछ छोटे-छोटे काम और करेगा। सुबह दो घंटे, शाम तीन घंटे—क्लर्की, टाइप, ट्यूशन कुछ भी इसी तरह सब सुधरेगा।" ……इसी तरह सुधरेगा—उसने कहा था।

सुबह दो घंटे, शाम तीन घंटे, वह सोचती रही थी।

और सचमुच सुबह सात बजे से रात दस बजे तक एकरस और उबाऊ कार्य-क्रम उसने अपने पीठ पर लाद लिया। जानवर-सा लगातार काम- काम और महीना खतम होते न होते, वह किसी तरह अपनी हड्डी-हड्डी तोड़कर, ढाई सौ रुपये बटोर लेता था।

शुरू के दिनों में जिन्दगी बदलती सी लगी। उसके लेनदारों की लम्बी भीड़ भी अब कुछ आश्वस्त होकर ठहर गई थी और घर में भी छोटी-छोटी चीजें अपना सर उठाकर कभी-कभी एक घर होने की गवाही देने लगी थीं, चाहे, वे चार चम्मचें ही हो या कभी दो प्याले।

एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष बीते। और तब उसने लगा कि स्थितियां नियंत्रित नहीं हैं। वे धीरे-धीरे चटक रही हैं और उसको मुट्ठी से फिसलती जा रही हैं। एक सियाह थकान पहले उसके चेहरे पर आई, फिर नसों में उतरने लगी और तब आंखों में उभर कर जम गई।

पहला हमला उसकी नींद पर हुआ। वह देर रात तक करवटें बदलता रहता और फिर झटके से उठकर तेज रोशनी में उन बेपनाह चोटियों को खोजता, जिन्होंने उसके शरीर को सुई-सुई छलनी कर दिया होता। वह एक-एक करके कपड़े उतार डालता और उसके बदन से चिनगारियां फूटती रहतीं……।

वह कुछ दिनों तक यूं ही घसिटता रहा। उसकी आंखों में तब अपनी हालत पर आश्चर्य था और उससे भी पीछे एक पराजय और एक छीलता हुआ आतंक। आफिस से लौटने के बाद शाम सात बजे जब वह काम की ओर फिर मुड़ता, तो कभी-कभी उसके घुटने थरथराते रहते, लेकिन उसकी आंखों की पुतली इतनी तेजी से चलती कि लगता वह अपने थरथराते घुटनों को पीछे, छोड़, आगे बढ़ जाना चाहता है।

लेकिन नहीं। कुछ नहीं होना है। न कोई उम्मीद, न बचाव।......शायद एक दिन उसने इस दर्दनाक तथ्य को पहचान लिया था और लम्बी दौड़ में दौड़ने वाले एक ऐसे खिलाड़ी की तरह वह बीच रास्ते में ही अचकचा कर रुक गया था, जिसके साथी बहुत आगे निकल गये हों और जिसे सहसा यह लग गया हो कि अब कुछ नहीं होना है......कुछ नहीं।

आशंका ! नहीं आशंका नहीं, घबराहट भी नहीं, सिर्फ उसका चेहरा राख हो गया था और आंखें असम्प्रक्त होकर थिर हो गई थीं। वह कई दिनों तक दिन-रात सोता रहा और इसके बाद एक मरियल रिरियाते हुये कुत्ते की शक्ल में जिन्दगी में वापस आ गया।

लेनदारों की भीड़ तब फिर लगने लगी थी।

सुबह से शाम तक सैकड़ों बातें, हजारों झिड़कियाँ, गालियां और उसका पति उन्हीं के बीच एक गठरी की तरह असहाय—लुंजपुंज झूलता रहता। झूठ के उसने पहाड़ लगा दिये थे, दिन-रात सिर्फ एक झूठ से बचने के लिये दूसरा झूठ गढ़ने में वह मशगूल रहता।

घर बदलते गये......छोटे होते गये और कपड़ों में होने वाले सुराख कहीं भीतर प्रवेश करते गये।

तभी किसी रात को एक अँधेरी सड़क पर चलते हुये उसके पति ने दूर कोठों की एक पाँति की ओर उँगली उठाई थी—

'कितनी मौज है उन सालियों की।' उसने चबा—चबाकर कहा था।

'मौज ?' उसके पति का शब्द उसके दिमाग पर भारी पत्थर की तरह बजा और उसकी आंखों में सफेद झांई उतर आई, जिसे पलटकर उसने अपना ही चेहरा देखना चाहा। वह बिलकुल मर चुका है—उसे लगा था।

फिर अनजाने ही जलती हुई देह का एक लम्बा सिलसिला। वह दिन-ब-दिन जलती रही और उसका पति पूरी धूर्तता और धैर्य के साथ एक निश्चित उद्देश्य के लिये उसे हवा देता रहा।

उसी के बाद वह ऊँचा, लम्बा, रोबीला और छोटी-छोटी मूँछों वाला व्यक्ति एक दिन उसके कमरे में सरक आया था, जो पिछले एक हफ्ते से उन लोगों के साथ रहने लगा था और जिसे उसके पति ने पटना का रहने वाला एक मित्र बताया था।

पहले बालों में स्पर्श हुआ था। फिर हथेलियों और बांहों पर धीरे-धीरे उँगलियां फिरती रही थीं। वह नींद में कुनमुनाती रही·····। फिर उँगलियाँ जाघों तक उतर आईं। बार-बार की रगड़ के बाद वह ढीली पड़ने लगी थी और उसके भीतर एक शोला लहकने लगा था। ···जब ब्लाउज के बटन चटके, तो वह कुछ होश में आ चुकी थी।·····वह थरथराती हुई छाया धीरे से उसके बगल में सरक आयी······।

तभी जैसे एक धमाका हुआ और लगातार दरवाजे पर हथौड़े बजते गये। वह बिजली की तरह बगल में घूमी लेकिन बगल की लम्बी छाया उछल कर नीचे जा चुकी थी।

दरवाजे के पीछे से उठती हुई एक आवाज ने उसकी तन्द्रा पूरी तरह तोड़ दी। भय का एक भूरा जत्था उसके भीतर उतर गया। उसे नहीं ख्याल कि किस तरह उसने लैम्प पर जलती हुई कांडी रखी और किस तरह दरवाजा खोला।

धुँयें के धक्के की तरह उसका पति भीतर घँस आया। उसका चेहरा बहुत पीला था। सबसे पहले······हां सबसे पहले उसी ने शायद अपनी सफेद चमकती गोल छातियों और नंगी टांगों को देखा·····और देखा कि उसका पति उसे सीधी छीलती आंखों से घूर रहा है।

सब कुछ लम्हे भर में गुजर गया। उसे कुछ भी समझते देर न लगी। सामने लम्बा आदमी अपनी पतलून पूरी असहायता और बेशर्मी से चढ़ा रहा था। उसने अपने ऊपर चादर फेंक ली, नहीं कुछ नहीं हुआ।' उसने बारीकी से पति की ओर देखा और मरी आवाज में कहा--'कुछ भी नहीं·······।

'कुछ नहीं हुआ।' शायद वह फिर यकीन दिलाना चाहती थी, लेकिन तभी उसका पति बिजली की तरह सामने की ओर बढ़ा—

'निकालो साले !' उसने थरथराते हुये इंजन की तरह कहा। उसके कंधे सिकुड़े थे और दोनों मुट्ठियां आपस में गुँथकर हवा को काट रही थी.........वह एक नट की तरह कमरे में मुट्ठियां नचाता हुआ चहलकदमी कर रहा था......।

लम्बा आदमी दो कदम आगे बढ़ा और सधी हुई कड़ी आवाज में बोला—'रकम निकालो।'

'कौन-सी ?'

'जो तुमने पी है।' और उसने औरत की ओर देखा—'इसके लिये.......'

'हरामी की औलाद...' उसके भीतर का एक नंगा आदमी निकल आया था—'ले लेना—ले लेना। कर लेना हिसाब।' उसने दांत भींचा और पूरी ताकत से लम्बे को दरवाजे की ओर धक्का दिया।

लम्बा लड़खड़ाया, कुछ ठिठका, कड़ा हुआ, लेकिन फिर बाहर निकल गया।

अब वह पत्नी की ओर घूमा, लेकिन उसके लिये अभी पल भर पहले आकाश कई-कई टुकड़ों तड़क चुका था और उसको भारी-भारी चादरें उसके सर की ओर बेतहाशा गिरती आ रही थीं।

समझने को अब कुछ शेष नहीं था। उसका सौदा हुआ है......वह बेच दी गई है—यह ख्याल कीड़े की तरह उसकी चमड़ी उधेड़ रहा था।

उस क्षण उसे न अपना होश था, न अपनी उस चादर का जो उसके अधनंगे बदन को ढके हुये थी, जब वह अपने पैरों को स्प्रिंग पर पल भर में खड़ी हुई—'नीच ! कमीने !' वह गला फाड़कर चिल्लाई—'तू मेरी चमड़ी वसूल रहा है ?' और आधी रात के कुत्ते की तरह हुलकारी मार कर वह रो दी।

पड़ोसियों को 'क्या हुआ' आवाज के साथ ही उसका पति हवा की तरह बाहर निकल गया था। बीच फर्श पर पड़े हुये गली में जूतों की गुम होती आवाज उसने आखिरी बार सुनी थी।

उस पिछले हादसे की रात के बाद कई दिनों तक लगातार वह दो कमरों के उस छोटे से घर में बन्द रह गई थी। वह नफरत से इस तरह खौल रही थी कि न तो अकेलेपन की भयावहता और न कुशलता का डर ही उसे सता पाया। परन्तु जैसे-जैसे घटना हवा में फैलने लगी और उत्सुकता से तमतमाया हुआ चेहरा लिये हुये हमदर्दों की भीड़ उसके घर और उसकी व्यक्तिगत जिन्दगी में धंसने की कोशिश करने लगी, उसे महसूस होने लगा कि वह अकेली है और बाहर एक असुरक्षित अँधेरा

भविष्य अपने विशाल जबड़े फैलाये खड़ा है·····और यह भी कि हाड़मांस का बना एक आदमी उसको छोड़ गया है।

परन्तु जब भी उसका पति मुट्ठियाँ नचाते हुये एक नंगे आदमी की शक्ल में उसके सामने उपस्थित होता, नफरत का एक सैलाब उसे भूनता हुआ उसके ऊपर से गुजर जाता।

और तभी उसने पहचाना था कि वह सुलगती हुई नफरत उसके भीतर एक रोशनी की शहतीर में बदल रही है और उसके ख्यालों को दूर उस दूसरे किनारे तक ले जा रही है, जो जाड़े की रातों में कोहरे से लदकर स्तब्ध खड़ा रहता है और जिसकी भूरी-गोली बालू से कोई एक उम्मीद का मोती रह-रहकर चमक जाता है। उस पार, भरे-पूरे लहलहाते दिन उसके दिमाग में बेचैनी से चलने लगे थे और वह सी-सी कर उठती थी।

उसे लगता था, यह कितना आसान है—एक निर्णय और फिर इस गलीज जिन्दगी के चोले को उतार फेंकना और नये सिरे से अपने चेहरे को दो चौड़ी हथेलियों में देकर अपना एक अर्थ तैयार करना। उसे लगता था, यह हो सकता है। यह हो सकता है—अभी वह जवान है और उसकी नसों में चमकता हुआ पारा है।

तब सम्पर्क में आने वाले हर पुरुष को उसने एक अन्दाज से देखा और उसके भीतर उसे पहचानने की कोशिश की। लेकिन यह कुछ नहीं हुआ। ख्यालों में चलती हुई वह पुकार कभी भी जुबान तक नहीं आ पायी, क्योंकि उसने पहचाना कि हमदर्दों की भीड़ में अलग-अलग खिंचे वे सभी चेहरे सामाजिक चेहरे थे—पाक-साफ और शरीफ। वह उस समाज का नाम लेकर रोते या हंसते थे, जिसे इत्तफाक से वह भूल चुकी थी।

जल्दी ही वह सारा तिलस्म छँटने लगा। उसने पाया कि वह मुश्किल में है। दुनिया के लिये यह सहना नामुमकिन हो गया था कि वह अकेली रह सके, इसलिये उसने अपनी नेक सलाहों के ढेर लगा दिये थे और तमाम तरह के होने-अनहोने डर उसके लिये तैयार कर दिये थे। उसे लगता कि उस पर बाकायदा हमला हो रहा है। वह बचाव के लिये अपने भीतर होती गई, सिमटती गयी। वहाँ उसने अपनी नफरत टटोली, लेकिन अब वह पिघलती जा रही थी·······उसकी पकड़ से सरकती जा रही थी। वह सिर्फ अकेली हो रही थी और पस्त हो रही थी।

तभी उसके पति को लेकर उसके पास संदेश-पर-संदेश आने लगे :—

'वह शरमिन्दा है।'

'उसको तुम्हारे सामने आने की हिम्मत नहीं।'

'उसने ऐसा कुछ नहीं चाहा था……कुछ नहीं किया था।'

'तुम्हें ही उसको मना लाना होगा। तुम्हें ही उसके पास जाना होगा। इतना ख्याल तो रखना ही होगा कि वह पुरुष है।'

'वह सिर्फ गलतफहमी थी।'

'वह गलतफहमी थी।'

'गलतफहमी……।'

वह एक गलतफहमी ही हो, उसने अन्दर से चाहा था और पूर्ण पराजय की पस्ती के बावजूद अपने पति के पास जाने के लिये जन्नाटे से खड़ी हो गयी थी। अपनी दूर की एक मौसी की ड्योढ़ी पर बैठा हुआ उसका पति दूर से ही दिखा। वह पैरों को साधते हुये उसके सामने दस-पन्द्रह गज की दूरी तक आ गयी और हवा में एक झटके से मुस्कराई। पति ने सिगरेट सुलगायी और ढेर सारा धुआँ उगल दिया और अभेद्य बना बैठा रहा। वह बिलकुल उसके सामने आ ठिठक गयी। फिर भी वह नहीं हिला और उसकी दो गोल आँखों में अपरिचय वैसे ही टँगा रहा। इस बार एक दुर्वह निराशा ने उसका खून जमा दिया।……लेकिन सिर्फ दो कदम उसने उन्हें लाँघा। वह फिर ताकत लगाकर मुस्कराई और पति के कन्धे पर अपनी बाँयीं हथेली टिका दी—'घर लौट चलो।' उसे नहीं मालूम, यह किसने कहा?

कतरा-कतरा रात चुक गयी है और वह कमरे के ठंडे-सीले फर्श पर एक सामान की तरह पड़ी है। अभी पिछली ही रात दूसरी बार उसका पति उसे छोड़कर गली में जूते बजाता हुआ गुम हो गया है।

फर्श बहुत गीला है। उसमें ढेर सारा पानी सरक आया है। वह दाहिने हाथ से उसे टटोलना चाहती है। उसका हाथ कहाँ है? वह हिलता क्यों नहीं? उसके दाहिने शरीर के नीचे उसकी लाश फँसी है……। बायाँ हाथ अनिच्छा से टखनों के फन्दे से खुलकर जमीन पर आया है। नहीं, पानी नहीं, फीकी-फीकी सुबह कमरे में पसर रही है……

कंधे पर पत्थर की भारी-भारी सिल्लियाँ हैं और दिमाग में ठंडी सुइयाँ धँस रही हैं…… दाहिनी ओर एक लाश है—पतली।

यह देह है? कितनी बेवजह! ……काहिल, बेजान। इसकी एक अलग दुनिया है। इसमें जब आग जलती है, तो नाते-रिश्ते, एहसास, संकल्प और वायदे

राख हो जाते हैं। नहीं, वह गलतफहमी का कारण नहीं है, लेकिन यह देह है ?……ऐसा फिर हो सकता है ?

हरर-हरर आग के बीच वह नंगे शरीर पर धँसता रहा।—मजा देता है ? हाँ ! अन्दर धँसता है ? हाँ ! हरर-हरर आग।—मेरा है ? हां ! मेरा है ? हां ! उसका ?……उसका है ?……उसका ? हां ! उसका ? हां ! उसका ? हां……। इस गलते-ऐंठते ताबूत के बीच ऐसी आग फिर संभव है, उसे यकीन नहीं आता।

……एक काली परछाईं उतर आती है। नहीं, उसने कुछ नहीं कहा था, अंत तक नहीं ……सिर्फ ढेर सारी काली सलवटें।

……यह क्या है ? यह कौन अँधेरा धीरे-धीरे बुहार रहा है ?…… ठंडे आँगन के बीच धुँधलेक से नहाया कोई खड़ा है……

कितनी-कितनी धूल और एक चेहरा। नौकरी…रोजगार। दो घन्टे सुबह… तीन शाम।…वह कौन औंधा गिरा है….कंधे थरथरा रहे हैं…?

यह किसका कमरा है बन्द पिरामिड की तरह हवा में उठता—ऊपर-ऊपर ? नीचे निचाट मैदान और पीली गर्द और तेज हवा। अँधेरा घना होता। यह नंगे जिस्म, टांगें हवा में चौड़ी किये कौन पड़ा है। दम घुटता है। क्या होना है सीने पर दो फोड़े उठ आये हैं—अन्दर तक ऐंठन होती है। हवा को तोड़ती एक चीख। आखिरी क्षण छातियों पर झुके सिर्फ दो अनजाने हाथ दिख रहे हैं।

सहसा भक से रोशनी की सलाइयाँ उसकी आंखों में धंस जाती हैं। वे आंखें खोलती हैं, बन्द कर लेती हैं, फिर धीरे-धीरे खोलती हैं।

उसके आधे बदन पर धूप पड़ रही थी और कमरे में ढेर सारा उजाला घुस आया था। वह एक सिलसिले से देख डालती है—एक टीन की कुर्सी, एक मेज, दो गिलास, लोटा, खाट, मुड़ा-मुड़ा आधा बिछा बिस्तर। वह एक झटके से उठती है, लेकिन सर लट्टू की तरह चारों दिशाओं में घूम जाता है। दोनों हथेलियों से वह जमीन पर टिक जाती है और उसी तरह उटंग बैठे धूप भेजता दरवाजा ढकेल देती है। एक गुनगुना अँधेरा कमरे में दौड़ आता है, उसे कुछ राहत होती है।

वह उठना चाहती है। लेकिन इसके पहले कलेजे के भीतर तक गर्म हवा का एक रेला उतर जाता है। उसे ख्याल आता है, पिछली रात आगे बरामदे की खुसर-पुसर से वह जाग गई थी। कुछ ही देर में वह उठकर खड़ी होने पर मजबूर हो गई। उसने दरवाजे की फांक से बाहर झूलती लालटेन की रोशनी में देखा—

इलाहाबाद जनपद में

परिवार कल्याण महोत्सव

१८ दिसम्बर से ६ जनवरी तक

स्थान :—१—स्वरूप रानी अस्पताल.२—मोतीलाल नेहरू अस्पताल ३—तेज बहादुर सप्रू अस्पताल ४—मेहता अस्पताल, भरवारी ५—प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सैदाबाद ६—सोरांव ७—मेजा ८—चितरंजन अस्पताल, करछना ।

सुविधायें—नसबन्दी कराने वाले को ६० रु० नकद, मुफ्त दवाइयां, आने-जाने तथा भोजन की सुविधा प्राप्त होगी। एक कार्ड भी मिलेगा जिससे पूरे परिवार को इलाज, रोजगार तथा सरकारी ऋण मिलने में प्राथमिकता होगी।

● प्रेरित करने वाले को भी १० रु० मिलेगा।

● **जिला परिवार नियोजन ब्यूरो द्वारा प्रसारित**

शोक

सैयद एहतशाम हुसैन उर्दू के महान आलोचकों में से थे। उर्दू साहित्य में उन्होंने आलोचक के रूप में ही प्रवेश किया और प्रगतिशील आन्दोलन के प्रमुख नेता रहे। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० ए० करने के बाद वे लखनऊ यूनिवर्सिटी में उर्दू के लेक्चरार हो गये थे। वहां से इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में उर्दू विभाग के अध्यक्ष होकर आये। वे अमरीका और रूस भी गये थे। उर्दू में एक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका है और अनेक निबंध संग्रह भी छप चुके हैं। उन्होंने हिन्दी में भी उर्दू साहित्य का इतिहास लिखा है। हिन्दी साहित्य का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था और किसी भी विषय पर बोल सकते थे।

१ दिसम्बर को सुबह साढ़े आठ बजे अचानक हृदय गति बन्द हो जाने से उनका देहान्त हो गया।

वह सिर्फ अट्ठारह उन्नीस साल का था, लेकिन चेहरे पर भरपूर आवारगी थी, गालों के दोनों ओर दो भूरे चकत्ते थे। आंखें अन्दर बैठीं, पर चमकदार थीं—तैंतीस वर्ष का उसका पति उस लड़के के सामने रिरिया रहा था।

'क्या करना होगा?'

'प्यार-मोहब्बत! आओ-जाओ और उसे पटा लो। तुम हसीन हो, क्या मुश्किल है?'

'ना बाबा। हम माल नहीं पटाते। पैसा खरचते हैं।'

और तभी उससे रुका नहीं गया। उसी दम दरवाजा खुल गया था और हंगामा हो गया था। लेकिन अब नहीं, अब कुछ नहीं, उसने सोचा।

कल का दिन इतना अनिश्चित नहीं होगा। वह सिर्फ जायेगी और वह लौट आयेगा।

लेकिन अब शुरुआत उसे करनी होगी।

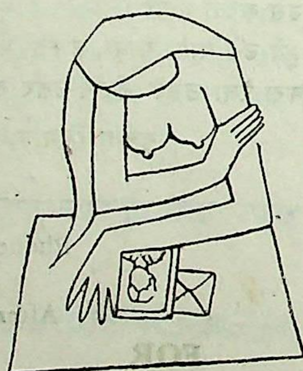
कुर्सी के सहारे उठते हुये उसे याद आया, उसने कहा था—'सब ठीक हो जायेगा' और गर्म हवा का दूसरा रेला उसके भीतर उतर गया।

सूचना विभाग, प्रकाशन ब्यूरो, लखनऊ।

व्यंग्य

एक समाजवादी चकलाघर

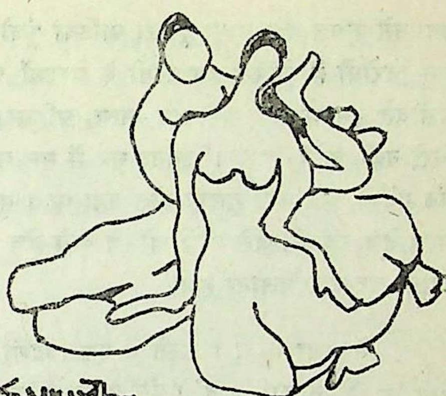
श्रीकांत चौधरी



'ये डेढ़ करोड़ रुपये का भवन दिल्ली में बनेगा भाई साब ?' छोटी बहन की आंखों में प्रश्न था—मैं अपनी शर्ट का आखिरी बटन लगा रहा था। चौंक गया, फिर समझ आया कि एक अखिल भारतीय प्रख्यात राजनीतिक पार्टी का भवन बनने के बाबत उसका प्रश्न है ? मैंने 'हूँ' कह कर प्रश्न टाल दिया। उसने उसी पृष्ठ पर एक और शीर्षक जोर से पढ़ा—कलकत्ता में अनुमानतः १० लाख व्यक्तियों के पास रहने को घर नहीं, लगभग ५ लाख लोग फुटपाथ पर सोते हैं !' वह मुझसे कुछ पूछना चाहती थी, अखबार मैंने छुड़ा लिया। क्योंकि नीचे उसी कालम में उस पार्टी के अध्यक्ष का वक्तव्य था। जिसके अनुसार 'गरीबी हटाने के लिए भारतीय-जन की जरूरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उनकी शासक पार्टी कृतसंकल्प थी और

जी जान से समाजवाद की स्थापना को जुटी थी। मैं हँस पड़ा, अखबार में आगे जाने कितनी हास्यास्पद बातें छपी होंगी; ऐसा सोच, अखबार मैंने सोफे पर फेंक दिया।

मुझे लगा समाजवाद एक वेश्या हो गया है, जो भी साधन सम्पन्न ग्राहक आता है, वेश्या उसे ही प्यार करने लगती है। वही ग्राहक दावा करने लगता है कि



वेश्या पर, सिर्फ उसी का अधिकार है! इस देश के शीर्षस्थ सत्तारूढ़ नेताओं के सामने कितने पैशाचिक कृत्य होते रहते हैं। लेकिन वे तो ऐसा चिंतन नहीं बघारते, देश में कुछ भी होता रहे, लेकिन बुद्ध, ईसा, गौतम, गांधी से शुरू कर, जनसेवा और राष्ट्रप्रेम पर ही अपनी बातें खत्म करते हैं!

मैं घर से बाहर निकल पड़ता हूँ। जगह-जगह पोस्टर चिपके हैं, हमारी नीति है 'गरीबी हटाओ!' मुझे अपने सामने वाले बंगले के साहब की याद आ गई। वे अपनी नौकरानी को अक्सर डांटते हैं—बातें बाद में करना, लेकिन पहले 'कचरा हटाओ!' साहब ने कह दिया 'कचरा हटाओ!' नौकरानी का काम है कि वह कचरा हटा दे, नौकरानी साहब से यह नहीं कह सकती कि आप कचरा न डालें, कचरा बहायें नहीं ···।' कहेगी तो साहब नौकरी से छुट्टी कर देंगे!

मैं आजाद पार्क की ओर निकल आया हूँ। भारी भीड़ जमी है। एक ऊँचा मंच है मंच पर कीमती कालीन है आबनूस की सुन्दर कुर्सियां हैं एक सफेद खादी की चिरपरिचित वेशभूषा ग्रहण किये, मालायों से आकंठ डूबा नेता ५-६ माइको के बीच अपना जबड़ा फाड़े भीड़ से, गम्भीर स्वर में कुछ कह रहा है। नीचे आवारा लड़के, पार्टी के आदमी, खोमचे मूंगफली, चाय-पान वाले और कई राहगीर कुछ भाषण सुनते, अपना धंधा पानी चलाते बैठे हैं; नेता ने हाथ उठा कर जनता से कहा— हमने बांगला देश बनवा दिया, राष्ट्रीयकरण कर दिया, भूमि-सीमा बंदी लागू कर दी। हम जनहित के लिए, देश की प्रगति और विकास के लिए लगातार कार्य कर रहे हैं। योजनाएं बना रहे हैं क्योंकि आपने हमें अपना प्रतिनिधि बनाया है······ हमारी पर्टी के जन हितकारी, समाजवादी नीतियों में जो भी पार्टी टांग अड़ायेगी,

हम उसे कुचल देंगे ...... दूसरी पार्टियां पूंजीवादी हैं। प्रतिक्रियावादी हैं, हिंसक हैं, जन विरोधी हैं, लेकिन हम गांधी के आदर्शों पर चलते रहे हैं चलते रहेंगे, चाहे लाख मुसीबतें हम झेलें ...... त्याग, सत्य, अहिंसा, जनसेवा के लिये हम प्राण भी देने में पीछे नहीं हटेंगे ......।' इतना भर मैं सुन पाया, नेताजी पीछे हट कर कुर्सी पर बैठ गये थे, अब कोई दूसरा बोल रहा था। मुझे ऐसा लगा जैसे मंच के नेता अपना माल बेच रहे हों, जैसे नीचे खोमचे वाले बेच रहे थे। दोनों का लक्ष्य पैसे कमाना अपना घर-बार चलाना है।

मैं चला आया। रास्ते में एक विदेशी कार सर्र से निकल गई। मुझे गौरव हुआ कि मैं इस काबिल हूँ। इस गरीब मुल्क में लोगों के पास (साइकिल के) नये ट्यूब-टायर खरीदने के लिये पैसे नहीं हैं, लेकिन उसके प्रतिनिधि लाखों रुपये की लग्जरी कार में जनता को उपदेश देने आते हैं; कार में वही गांधीवादी सज्जन नेता थे। गांधी आज होते तो अपने भक्तों का आचरण देखकर अपने ज्ञान में न जाने कितनी वृद्धि करते ... चमत्कृत होते!

अनजाने में मैं यहाँ चला आया, अपने दोस्त के मुहल्ले, सिविल लाइन्स में। मैं खुश हुआ, आज मेरा मित्र मुझे एक बड़ी हस्ती से मिलवाने वाला था। मित्र पत्रकार है, मित्र के घर पहुँचा तो वह तैयार बैठा, मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बताया कि मंत्री महोदय को वह छः बार फोन कर चुका है। हर बार किसी न किसी महत्वपूर्ण वार्ता में व्यस्त थे, अभी थोड़ा फुर्सत हुआ तो कुछ जरूरी फाइलें निपटाने में लग गये, लेकिन मिलने की स्वीकृति दे दी है।

दो-तीन लोकल बसें बदलते, पसीने मे नहाये हम लोग उनके बंगले पहुँचे, रात के दस बज रहे थे। मैं सोच रहा था कितना कर्मठ है ये आदमी, दिन-रात देशहित के लिए जरूरी बैठकों में बैठा रहता है और अब फाइलें निपटा रहा है। तभी मेरी नजर एक सुगठित शरीर वाली युवती पर पड़ी और मेरी विचार शृंखला भंग हो गई, वह तेजी से मुख्य गेट को पार कर सड़क पर खड़ी टैक्सी की ओर बढ़ी चाल में लड़खड़ाहट बाल थोड़े अस्त-व्यस्त और हाथ, साड़ी को कमर के ऊपर पर सहेजते हुए। मेरा मित्र अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कराया। रात दस बजे अकेली यह युवती यहां कौन सी जरूरी समस्या निपटाने आई होगी? मित्र ने जलते प्रश्न को शीतल किया—डियर प्रदीप, व्यर्थ चिंतन मत करो, मिनिस्टर साहब की जरूरी फाइलों में से एक यह भी थी, जो निपट गई है।'

हम दोनों को चपरासी ने अंदर के हालनुमा कमरे में बैठाया। गैलरी पार करते वक्त मुझे बड़ी तकलीफ हुई, मैं अक्सर ऊबड़-खाबड़ या रूखी सड़कों पर ही चलता हूँ लेकिन यहां फर्श पर बेशकीमती कालीन बिछा था, एक इंच पैर धंस जाता था। कीमती सोफे पर बैठते संकोच हुआ, पर बैठ गया, पूरा कमरा एयर-कन्डीशन्ड था। विभिन्न कीमती पोर्ट्रेट दीवालों पर लगे थे। कमरे का सारा फर्नीचर इतना कीमती था कि एक नया बंगला सिर्फ फर्नीचर के बदले खरीदा जा सकता था। मुझे भ्रम हुआ कि किसी राजे महराज के महल में हूँ। मंत्री महोदय आ गये रेशमी गाऊन और पैरों में फर की चप्पलें पहने हाथ की कलाई में सोने की चेन वाली घड़ी-डायल पर हीरे के अंक चमक रहे थे। उन्होंने प्रेम पूर्वक नमस्कार किया। ये वही सज्जन नेता थे जिनको ४-५ घन्टे पूर्व भाषण देते मैंने देखा-सुना था।

'क्यों भाई ? वो समाजवादी नीतियों पर मेरे स्टेटमेंट को प्रेस में दे दिया क्या ?' उन्होंने पूछा।

'जी हां, आज ही डिस्पैच किया है, मित्र ने उत्तर दिया। उन्होंने चपरासी को कुछ लाने का इशारा किया फिर चौंककर मेरी ओर देखा। मित्र ने तत्काल कहा--ये मेरे अभिन्न मित्र हैं प्रदीपकुमार एम० ए० गोल्ड-मेडलिस्ट, नौकरी की तलाश में !' 'अच्छी बात है' मित्र का इशारा उन्होंने समझा, फिर ठहरकर बोले—आज-कल-लड़के मेहनत मजदूरी नहीं करते, मुझे देखो, १० वीं पास हूँ पर देश के प्रति लगन थी त्याग और श्रम था......आज मंत्री होकर राष्ट्र सेवा में लगा हूँ।' हम दोनों कातर स्वर में जी हाँ भर कह पाये। मुझे समझ में आ गया कि मैं क्यों स्वर्णपदक लेकर भी बेकार हूँ।

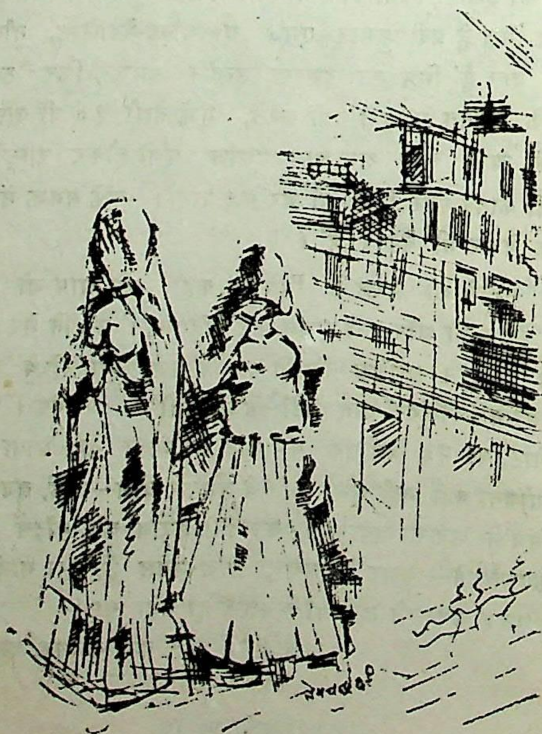
बात टालने की गरज से मित्र ने कहा, खैर आप जो सेवा कहेंगे हो जायेगी, मगर प्रदीप की ओर जरा ध्यान करे रहिएगा।' उन्होंने मेरे सर से पैर तक का निरीक्षण किया। आर्थिक स्थिति का अंदाजा लगा रहे थे। ठंडे स्वर में बोले—ध्यान बराबर रक्खूंगा' बात पार्टी के सिद्धांतों पर आ गई। मैं अचानक पूछ बैठा आपकी पार्टी को २३ वर्ष तक पूंजीवाद का ध्यान नहीं आया ? तब 'गरीबी हटाओ' की योजना क्यों नहीं सूझी ?' वे हँसकर बोले—भाई, तब हम 'लोग भी गरीब थे ! मित्र ने ठहाका लगाया। चपरासी शराब की बॉटलें लेकर आया। मंत्री जी सकपका गये—'सुअर के बच्चे, आज मंगल है, मेरा गांधीव्रत है, काफी लाने को कहा था।' चपरासी उल्टे पाँव वापस हो गया था।

नया बाजार, दमोह (म० प्र०)

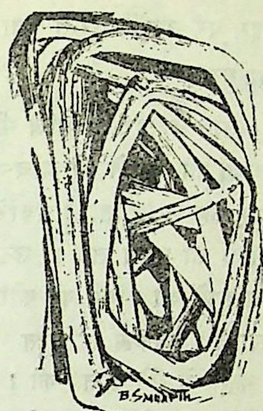
दिवंगत

गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव

दिन ढल चुका था। फरवरी की कँप-कँपाती ठंडी हवाएँ। जैसे जाड़ा जाते-जाते एक बार जोर से भमक पड़ा हो। अँगीठी सुलग गई तो प्रताप बहादुर ने उसे उठाकर कमरे में रख दिया। श्यामबहादुर अँगीठी के पास आकर बैठ गये और हाथ सेंकने लगे। रत्ना की मामी भी वहीं आ गईं। आज ही वे दोपहर की गाड़ी से आयी थीं। इन बीस दिनों में वे तीन बार आ चुकी थीं। अकेलापन जब अधिक खलने लगा तो, प्रताप बहादुर भी वहीं आकर बैठ गये। फिर भी सभी चुप, समर बहादुर की स्मृति में खोए हुए। सभी के चेहरे उदास और बुझे हुए। चुप्पियों ने



खामोशी को और भी गहरा कर दिया था। पूरा घर जैसे झांय-झांय कर रहा हो। तभी चार साल की सुनीता अन्दर से दौड़ती हुई आयी और खामोशी को भंग करती हुई फुर्र से बाहर निकल गयी। उसे देखते ही रत्ना की भाभी को जैसे बात शुरू करने का बहाना मिल गया—इसे मैं अपने साथ लेती जाऊंगी। मेरे साथ रह जायगी।



हम लोग तो हैं ही देखने के लिए। प्रताप बहादुर ने बात काट दिया। लेकिन मन ही मन सोचते रहे कि अच्छा होता यदि सुनीता अपनी भाभी के पास रहती। एक बोझ ही हल्का होता। वे खुद इस बात को लेकर बहुत चिन्तित रहा करते कि भाभी और उनके सात बच्चों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उनके कमजोर कंधों से कैसे सँभलेगा। जंगी भइया बस दो सौ वेतन पाते हैं। उस पर तीन बच्चों का भार। श्याम भइया भी कितना पाते हैं। यही ढाई सौ के करीब, जो उनके पांच बच्चों के भरण-पोषण के लिए ही अपर्याप्त है। सबसे कम जिम्मेदारी सिर्फ उसी के पास है। सिर्फ एक बच्चा। लेकिन अपने डेढ़ सौ के वेतन से वह कितना बचा पाएगा। यह दस, बीस बस। वह भी बहुत जुगाड़ करने पर। ओफ...जैसे कोई चीख सी उनके मुंह से निकली हो। सिर को उन्होंने दोनों हाथों से ढक लिया। उन्हें लगा जैसे उनके घर पर कोई बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी हो जो भाई साहब की मौत से भी दर्दनाक है।

रत्ना की भाभी ने फिर जोर देना उचित नहीं समझा। बल्कि प्रताप बहादुर की प्रतिक्रिया से अपने को दोषी सा महसूस करने लगीं। मन ही मन वे पछताने भी लगीं। उन्हें लगा जैसे उन्होंने शोक-संतप्त भाइयों के जख्म को हरा कर दिया, लेकिन श्याम बहादुर ने उनकी चुप्पी से कुछ और ही समझ लिया। उन्हें लगा जैसे वे प्रताप की बात फील कर गईं। उन्होंने प्रसंग बदलने की कोशिश की—भाभी, कल रात मैंने एक अजीब सपना देखा कि मैं रेलवे लाइन के पास टहल रहा हूं। वहीं मुझे भाई साहब मिल गए। मुझे देखते ही वे मुझसे घर का हालचाल पूछने लगे। मैंने फिर उनसे पूछा कि वे इतने दिनों तक कहां गायब हो गये थे। उनके लिए घर में बड़ा रोना-धोना मचा हुआ था। फिर मैंने उनसे घर चलने के लिए

कहा। इस पर उन्होंने तुरन्त कहा – 'ना, ना, मुझे वहां मत ले चलो। वहां अब मैं नहीं जाऊँगा........'

प्रताप बहादुर की आंखें गीली हो आईं। रत्ना की भाभी भी विचलित हो उठीं। हाथों को कोयले की आंच पर थोड़ा सेंकने लगीं। दोनों गदोलियों को परस्पर रगड़ते हुए कहा – 'लगता है बेचारे का मन यहीं टँगा हुआ है।' श्याम बहादुर अपनी गीली आंखों को मलने लगे। उनके होठ बिचकने लगे। फिर भी उन्होंने अपने उमड़ते आंसुओं को बांधने की कोशिश की – अगले महीने में मेरे 'लॉ' का इम्तहान होने वाला है। बड़कऊ का बहुत बड़ा अरमान था कि घर में कोई वकील होता। उन्हीं के कहने से मैंने दफ़्तर की। जिम्मेदारी के बावजूद भी पहले बी० ए० किया। फिर 'लॉ' में नाम लिखाया। 'लेकिन अब पढ़कर ही क्या होगा। पढ़ूं भी तो किसके लिए........उनकी आवाज फिर भर्राने लगी।

'रत्ना कहाँ है?' रत्ना की भाभी ने वातावरण को गीला होने से बचाने की कोशिश की।

'होगी यहीं कहीं। प्रताब बहादुर ने अरुचि दिखाते हुए एक टालू जवाब दिया।

रत्ना की भाभी ने फिर आगे नहीं पूछा। सभी एक क्षण के लिए फिर अपने में डूब गए। लगा जैसे सभी के चेहरे पर एकाएक खामोशी चिपक गई हो।

एक बात मेरी समझ में नहीं आता भाभी—श्याम बहादुर ने चुप्पी को तोड़ते हुए कहा—कि भाई साहब के पास कोयले वाला वह झोला कहाँ से आ गया। झोला मैंने खुद अपनी आंखों से देखा है। माल गोदाम में रखा हुआ है। भाभी कहती हैं कि ड्यटी से लौटने के बाद। कपड़ा बिना बदले ही बड़कऊ सुनीता को लेकर लाइन के किनारे वाली दूकान पर पान खाने चले गए थे..................फिर वह झोला कहां से उनके पास निकल आया........मुझे तो लग रहा है कि भाभी कुछ छिपा रही हैं।

इसी बीच रत्ना कब दबे पांव आकर दालान के बगल वाली कोठरी में कपड़े बदलने लगी किसी को इसकी आहट भी नहीं मिली। श्याम बहादुर की बातें उसके कानों में साफ-साफ पड़ीं। वह तिलमिला उठी। उसकी इच्छा हुई कि वह कोठरी से बाहर जाकर उन्हें खरी-खोटी सुना दें। लेकिन न जाने क्यों वह जप्त कर गई। सच्चाई को नकारने का साहस शायद उसमें नहीं रहा। उसी ने तो उन्हे कोयला लाने के लिए मजबूर किया था। सुनीता रोती हुई भागी-भागी आयी थी और उससे

बताया था कि पापा गाड़ी से कट गए। यह हादसा सुनते ही उसके होश-हवाश उड़ गए थे। हाथ पांव जैसे सुन्न पड़ गये थे। लेकिन न जाने किस अज्ञात भय से उसने सुनीता को किनारे ले जाकर धमकाते हुए सिखाया था कि वह लोगों से यह बताए कि पापा उसे साथ लेकर पान खाने गए थे।

'हो तो सकता है। लेकिन यह सब जानकर क्या होगा। जाने वाला तो चला गया।' रत्ना की भाभी ने एक हल्की जँभाई लेते हुए कहा।

'आप नहीं समझ रही हैं कि मैं क्यों यह जानना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ यह साबित करना कि बड़कऊ का ऐक्सिडेंट ड्यूटी पर हुआ था ताकि सरकार से मुआवजा के लिए क्लेम कर सकूं।' श्यामबहादुर ने रत्ना की भाभी को संतुष्ट करने की कोशिश की।

'देख लीजिए कोशिश करके। अगर कुछ पैसे मिल जायँ तो अच्छा ही है। गीता की शादी में काम आयेंगे।'

'लेकिन इसमें वही झोले वाली अड़चन फँस रही है। बाकी सब ठीक है। उनके दफ्तर के बड़े बाबू को भी मैंने पटिया लिया है। ऐक्सिडेन्ट के समय बड़कऊ ड्यूटी के वर्दी में थे ही।..................इसीलिए मैं इस कोशिश में हूँ कि पहले वह झोला किसी तरह से मालगोदाम से गायब करा दूँ। फिर इस केस को आगे बढ़ाऊँ।.........सरकार से मुआवजा मैं लेकर रहूँगा।

रत्ना कपड़े बदल चुकी तो कोठरी से निकलकर दालान में आ गई। आवेश की तनिक भी झलक उसके चेहरे पर नहीं थी जिससे कोई यह अनुमान लगा सके कि उसने उन लोगों की बातें सुन ली हैं।

'कहाँ गई थी रत्ना।' रत्ना की भाभी ने पूछा।

'नरेश को लेकर उनके दफ्तर गई थी। उनकी तीन दिन की तनख्वाह बाकी थी। उसी को लेने के लिए..........।' उसने धीरे से कहा और फिर एकायक चुप हो गई। शायद वह इस क्षणिक अन्तराल में अपने को और भी संयत करना चाहती थी।

फिर उसने भाभी की ओर वीरान आंखों से देखते हुए कहा— 'जब मैं आफिस पहुंची तो सभी बाबू मुझे ऐसे घूर-घूर कर देखने लगे जैसे औरत को पहले कभी देखा ही न हो।'

प्रताब बहादुर मन ही मन गुस्से में आ गए। उन्हें लगा कि भाभी जानबूझ कर घर की इज्जत आबरू को उछालना चाहती हैं। वे बोल पड़े—'हम लोग कोई

मर तो नहीं गए थे। अगर आप इसी पर तुली हुई हैं कि घर के आबरू को खुले बाजार में बेंचे तब तो कोई बात नहीं।'

रत्ना उत्तेजित हो उठी—'हां हां मैं आप लोगों के घर की आबरू को बेचना चाहती हूँ। मैं खुद वे आबरू जो हूँ। मेरी आबरू रह ही कहां गई है। वह और रत्ना तो उन्हीं के साथ चली गई। अब तो बच गई है महज एक अभागिन......।'

और उसकी डब-डबाई आंखों के सामने कई चित्र घूम गए जिसमें एक चित्र उस दिन का था, जिस दिन उसके पति की आकस्मिक मृत्यु पर उसकी वृद्धा सास ने उसे प्रताड़ित किया था—कुलच्छिन कहीं की.........इसका पौरा ही खराब है। घर में पैर रखते ही छोटे को खा गई। अपने आदमी को भी नहीं छोड़ा। पता नहीं अबकी किसकी बारी है। एक चित्र उस समय का भी था जब उसके पति ड्यूटी से लौटे थे और कपड़ा बदलने जा रहे थे। तभी वह टोक पड़ी थी—कपड़ा मत बदलिये। कोयला लेते आइए, खत्म हो गया है। लकड़ी भी नहीं है कि खाना बन सके।

उसके पति थके हुए लग रहे थे। उन्होंने कहा—थोड़ा सुस्ता लूँ। तब जाऊंगा। इस पर वह गरज पड़ी थी—नहीं, नहीं अभी जाइए। नहीं तो खाना-वाना कुछ नहीं बनेगा। उसके पति ने विवश होकर झोला उठाया और सुनीता को साथ लेकर कोयला लेने चले गए और फिर नहीं.......

उसे महसूस होने लगा कि अपने पति की मृत्यु की जिम्मेदार सचमुच वही है।

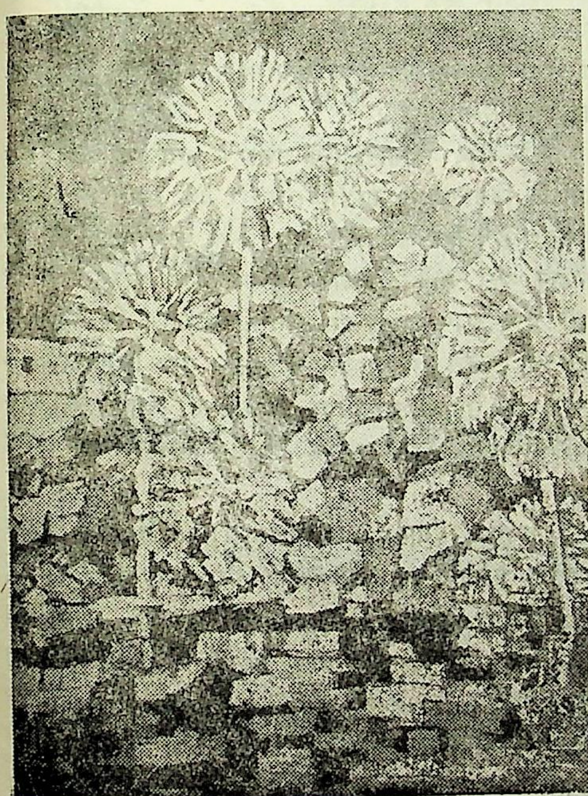
वह फफक फफक कर रोने लगी..........

अंग्रेजी विभाग
गनपत सहाय डिग्री कालेज,
सुलतानपुर

कथा चर्चा के लिये

(अक्सर ऐसा होता है कि अच्छी कहानियां भीड़ में खो जाती हैं इस स्तम्भ के अन्तर्गत उन्हें प्रकाश में लाना प्रयास रहेगा। लेखक और पाठक दोनों से ही हम चर्चा योग्य रचनाओं के विषय में सूचना का स्वागत करेंगे। हमें सुविधा होगी अगर प्रकाशित कहानी की एक प्रति भेजी जाय।

विविधा



ललितकला अकादमी द्वारा पुरस्कृत

प्रेमिन्द्रा

श्री प्रेमिन्द्रा नये चित्रकारों में अपना अलग स्थान रखते हैं। रंगीन तेज रंगों की पहचान और उनके विविध मिश्रण से उस तेज रंगों में भी उदासी की सृष्टि इनकी विशेषता है।

आपको सन् १९७० में ललितकला अकादमी द्वारा राष्ट्रपति पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था।

श्री प्रेमिन्द्रा फ्रीलांस चित्रकार हैं हाल ही में आपकी एकल चित्रकला प्रदर्शनी दिल्ली और बंबई में एक साथ आयोजित होने जा रही है।



'मैं क्यों पेन्ट करता हूँ ?' मुझे यह सवाल उसी प्रकार का प्रतीत होता है जिस तरह का सर जान हन्ट से उनके एक मित्र ने उनके बार-बार एवरेस्ट पर चढ़ने के असफल प्रयास पर पूछा था कि आप आखिर क्यों जान जोखिम में डाल हिमालय के इस उच्चतम शिखर पर चढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। उनका सीधा-सा उत्तर था। सबसे पहले तो मैं भी यही कहूँगा अपने पेन्ट करने के कारण के सम्बन्ध में,...क्योंकि यहां पेन्ट है, यहां रंग हैं और सारा संसार रंगों में लथपथ है। मेरी आंखें इन रंगों को देखने में समर्थ हैं।

परन्तु इससे आगे मेरे और पर्वतारोही के उत्तर में अन्तर आ जाता है। यह कहना अधिक ठीक होगा कि हिमालय से सम्बन्धित उत्तर यहीं खत्म हो जाता है और कला वाला चलता रहता है। हिमालय की तरह सिर्फ रंग होने से ही मेरे चित्र बनाने का कारण पूरा नहीं हो जाता, बल्कि इसका कारण रंग की अपनी अनोखी स्थिति भी है। आप शायद इस बात को मानते हैं कि मनुष्य के दिमाग के पश्चात प्रकृति की सबसे विचित्र वस्तु आंख है। आंख ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत तो है ही परन्तु रंग और बनावट का सीधा सम्बन्ध भी आंख के साथ है, बिलकुल उसी प्रकार जिस तरह चित्रकला का सीधा सम्बन्ध रंग और बनावट से है।

अब हम रंग और बनावट (clour and formed) की स्थिति पर आते हैं। अंधेरे में हम सोच सकते हैं, आवाज सुन सकते हैं, किसी वस्तु को छू सकते हैं सिर्फ देख नहीं सकते। परन्तु रोशनी होते ही ऐसे अनुभव होता है जैसे पहले कुछ भी ना था और अब सब कुछ है। अंधेरे में कोई वस्तु कितनी भी रस पूर्ण हो पर वह रँगीन नहीं हो सकती। उजाले की वास्तविकता आखिर क्या है ? रंग और बनावट। केवल रोशनी से ही बदलाव अनुभव होने लगा।

मैं इस प्रश्न का उत्तर भावुकता के अन्दाज में भी दे सकता था। जैसे मेरे अन्दर कोई शक्ति है जो मुझे प्रेरणा देती है कि मैं रंगों के माध्यम से उसको व्यक्त करता चला जाऊँ या जन्म से हीं मैं चित्रकार हूँ। फ्रेन्च चित्रकार डीगाह इस चीज शब्दों में रग और बनावट को महान कलाकारों के चित्रों में दर्शन को ही पेन्ट करने की प्रेरणा का कारण मानता था। वास्तविकता भी यह है कि स्वय रँग का आकर्षण ही मुझे पेन्ट करने की प्रेरणा देती है। कोई और कारण बताना तो ईश्वर के इस साकार रूप का निरादर करना है रंग के, बनावट के अपने गुण ने ही मुझे चित्रकार बनने पर मजबर किया है। यदि सब ओर अँधेरा हो जाय कोई रँग ना हो कोई शक्ल न हो तो कोई बडी-से-बड़ी शक्ति भी मुझसे पेन्ट नहीं करा सकती।

कथा चर्चा

गत माह दशहरा-दीपावली के आस-पास हिन्दी के मूर्द्धन्य कथाकारों की जैसी अभूतपूर्व कहानियां पढ़ने को मिलीं, उससे बड़ी कोफ़्त हुई। फणीश्वरनाथ रेणु, कृष्णचन्दर, इलाचन्द्र जोशी, भैरव प्रसाद गुप्त, कमलेश्वर भीष्म साहनी, लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि श्रीमानों ने हिन्दी पाठकों और सम्पादकों को खूब बेवकूफ बनाया। भैरव प्रसाद गुप्त और कमलेश्वर 'नई कहानी' के प्रवर्तकों में हैं। किसी समय कथा-भूमि को समरक्षेत्र समझकर दोनों ने खूब लाठियां भांजी थीं। दोनों कहानी के विकास में आत्मश्लाघा के स्तर तक अपने को जोड़ने की कोशिश करते रहे हैं, और स्थिति है कि दोनों वर्षों से अपने पाठकों को वेजान और कृत्रिम कहानियां दे रहे हैं।

'नई कहानियां' के नवम्बर अंक के विचार मंच में मत्स्यकुमार ने जिस वर्ग चेतना का सवाल उठाया है क्या उसकी कोई आवश्यकता है? मेरे विचार से साहित्य-सृजन में वर्ग चेतना महत्त्वपूर्ण न होकर जीवन की संवेदनशील तर्क दृष्टि ही प्रमुख होती है। साहित्य, सृजन वर्मियां की समान मानसिकता की वस्तु होता है। केवल राजनीतिक वर्ग चेतना साहित्य को एकांगी तथा सपाट बनायेगी, इसमें संदेह नहीं। साहित्यकार जिला कल्याण अधिकारी नहीं होता है कि वह वर्ग चेतना का सवाल उठाकर उसका निदान करने का प्रयत्न करे। इसी वर्ग चेतना ने ही अधिकांश प्रगतिशील हिन्दी कहानीकारों का विनाश किया है। अपढ़ तथा गरीब जनता की समस्याओं से जूझने के लिए और उन तक अपनी आवाज पहुँचाने के लिए केवल साहित्य को ही माध्यम बनाने की राय जिसने दी होगी, मैं समझता हूँ, वह साहित्य-रचना से अनभिज्ञ रहा होगा।

'कादम्बिनी के नवम्बर अंक में भैरव प्रसाद गुप्त की एक कहानी 'बिटिया' छपी है। अब देखिये, वर्ग चेतना ने इस कहानी की रेढ़ कैसे मारी है।.........एक

पुलिस सुपीरिंटेंडेंट साहब हैं जो बड़े कर्मठ हैं। बेटी के स्नेहवश वे सारी सैद्धान्तिकता भूलकर रामकिशन मुंशी के मार्फत एक जालसाज के बचाने के लिए घूस लेते हैं। यहां तक गनीमत थी। अब वर्ग चेतना का कमाल देखिये। यहां से तमाशा शुरू होती है…… साहब की पत्नी अपनी नौकरानी को बाल पकड़कर मारते हुए उन दोनों के सामने ले आती हैं। आरोप ? चार बिस्कुटों की चोरी का…… (वाह ?) नौकरानी भूल स्वीकारते हुए छोड़ देने के लिए गिड़गिड़ाती है और कहती है कि बीमार बेटी के पथ्य के लिए ही वह इसे जूठा समझ कर बिना कहे लिये जा रही थी। लेकिन सुपरिंटेंडेंट साहब पत्नी की रौद्रमुद्रा से सहमत होकर उसे एक लात मारते हुए हवालात में बंद करवा देते हैं (यह हुई न बात !)। देखा आपने ! इसे कहते हैं वर्ग चेतना की कहानी। फार्मूलेबाजी। क्या कहानी के लिए साहब की भ्रष्टाचार-कथा और उसकी सांकेतिकता पर्याप्त नहीं थी ? लेकिन इससे सर्वहारा वर्ग का समर्थन कैसे होता ? जब मत्स्यकुमार अपने स्तंभ में यह प्रश्न उठाते हैं कि, १९६२ के बाद 'नयी कहानियां' से भैरव प्रसाद गुप्त के अलग होने के बाद 'नयी कहानी' आंदोलन का क्या हुआ ? तब विवश होकर उनसे पूछना पड़ता है कि 'नयी कहानियां' से हट जाने के बाद भैरव प्रसाद गुप्त का क्या हुआ

से० रा० यात्री के अनुसार कमलेश्वर युद्धकाल में बांगला देश के लिए सारी दुनियां में अलख जगाते हुए घूम आये थे। से० रा० यात्री गद्‌गद् होकर ऐसा लिख सकते हैं। शायद इसे ही प्रभावित करने के लिए कमलेश्वर ने 'कथा-कहानी' (प्रवेशांक) में 'आधी दुनियां' छपवा दी है। यह समुद्र का एक सतही यात्रा-विवरण है जो क्रान्ति के लिए संलग्न बौद्धिक मनस् को कम, हिन्दी लेखकों के हीन भाव को अधिक उजागर करता है। कहानी में 'बांगला देश' का प्रसंग इतना 'जान बूझ कर' आया है कि वह सपाट और गर्व गौरव से हीन लगता है। बेल्जियम जाते हुए लेखक का साक्षात्कार तरुणी मार्था से होता है जो अपने बूढ़े पति को छोड़कर वैचारिक उन्मेल के लिए ग्रीस के सैनिक तन्त्र में पत्र-पत्रिकाओं के बंडल के साथ जा रही है। सारे जहाज में लेखक को मार्था और मार्था को लेखक जैसा भारतीय ही आत्मीय लगता है। जाहिर है यह भी जान बूझ कर है। दोनों ही क्रान्ति चेतना से लकदक कर रहे हैं। मार्था तो खैर, अपने देश की सैनिक पशुओं की मांद में जाकर लोगों की वैचारिकता को जगाना चाहती थी और इस सद् कार्य के लिए वह अपने शरीर के दुरुपयोग के लिए भी तैयार थी इसके विपरीत कहानी के नायक बड़े गर्व से बांगला देश के समर्थन के लिए दूसरे देशों की भावभीनी यात्रा कर रहे थे। इन दोनों स्थितियों में कितना विरोध है। इस दूसरे

छोर को लोग कायरता भी कहते हैं। कम-से-कम भारती जी में यह साहस तो था कि वे लड़ती हुई सेना के साथ मोर्चे तक जा सके।

इस बीच फरणीश्वरनाथ रेणु की दो कहानियां प्रकाशित हुई हैं—'अति चित्र की मयूरी' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान) और 'अगिनखोर' (धर्मयुग) रेणु अभी आंचलिकता के मोह को छोड़ नहीं पाये हैं। उनकी आंचलिकता की पकड़, भाषा के कारण, स्थितियों पर ढीली हो गयी है। निवेदन है, अब 'आइक्-रूला' रेणु जो अगर अपनी भाषा की नौटंकी को कम कर दें तो उनसे देश-जवार की जनता की बातें अधिक गंभीरता से बूझी जा सकती हैं। 'अत्तिचित्र की मयूरी' मोहनपुर गाँव की फुलपत्तिया और उसकी मां की, 'कुटीर शिल्प, पटना' के अधिकारी सनातन प्रसाद द्वारा उद्धार-कथा है। अंत में सनातन प्रसाद गंवई फूलमती के प्रेम में पड़ जाते हैं। रेणु की यह नवीन फिल्मी कथा है। दूसरी कहानी में रेणु का 'अगिनखोर' आज का युवा विद्रोही है। इसमें भी उनका पूरा 'टोन' हास्यरस और मजाक का है। ऐसे दिग्गजों की दृष्टि हीनता को देखकर सिर शर्म से झुक जाता है।

'धर्मयुग के दीपावली अंक में छपी भीष्म साहनी की 'तस्वीर' और 'नयी कहानियां' के नवम्बर अंक में प्रकाशित अमरकान्त की कहानी दुःख; दोनों ही अपने सपाटपन के कारण सामान्य हो गयी हैं, प्रभावित नहीं करतीं। भीष्म साहनी की अतिरिक्त सादगी ही उनकी कहानियों की कमजोरी बन गयी है। ऐसा लगता है कि दोनों कथाकार बे-मन से कहानियां लिखते हैं, स्थितियों का सपाट साक्षात्कार अपनी संवेदनशीलता के बावजूद, न मन को तृप्त करता है, न उद्वेलित ही। ऐसी ही कहानियाँ 'ज्ञान प्रकाश' की भी होती हैं।' 'गाय' पर लिखे हुए निबन्धों की तरह सीधे-सपाट और कभी-कभी विस्तृत भी। शुरू से अंत तक ऊष्मा रहित कारुणिक पलायन। जब ऐसी गतिहीन रुदनकथा कहीं पढ़ने को मिले तो ज्ञानप्रकाश को स्मरण कर लीजिये। 'नई कहानियाँ' के नवम्बर अंक में उनकी कहानी निरुद्देश्य दो बेकार युवकों की 'एब्सर्ड' मनस्थिति को लेकर लिखी गयी है और यह उनकी परिचित निबन्धात्मकता से हटकर है, लेकिन कारुणिक पलायन से यह भी मुक्त नहीं है।

'कहानी' के नवम्बर अंक में पुनः शैलेश मटियानी अपनी 'हलाल' कहानी के कारण आकर्षित करते हैं। गहरी जीवन दृष्टि के कारण उनके पास विषय का अभाव नही है। 'हलाल' कहानी में कसाइयों की दुनिया में अकेले पड़ते हुए खत्तन मियां के दर्द को जितनी तन्मयता से उसके परिवेश में शैलेश मटियानी ने चित्रित किया

है, वह प्रशंसनीय है। अस्पताल में दम तोड़ते हुए खत्तन मियां जब खांसते-खांसते अपनी हथेली पर खून के छींटें देखते हैं तो उनके मन में प्रतिक्रिया होती है कि, हलाल सिर्फ कसाई ही नहीं करते, वह बंदापरवर खुदा भी करता है। जिन्दगी भर बकरों को हलाल करने वाले खत्तन मियां ही अपने हलाल किये जाने के दर्द को समझ सकते हैं। उस मरते हुए व्यक्ति के कष्ट को और उसके जीने की निरर्थकता को कहानी का यह अंत बड़ी बेबाकी से रख देता है। यह कार्य-कारण का बाहरी सम्बन्ध न होकर मनस्थिति का संवेदनशील और तर्कपूर्ण विश्लेषण है और यह संवेदनशीलता तथा तर्क कहानी में आद्यंत विद्यमान है जो शैलेश मटियानी की रचना क्षमता के बारे में पूर्णतया आश्वस्त करता है।

इस अंक में रमेशचन्द्र शाह की कहानी 'उसका सच' प्रकाशित हुई है। शाह मुख्यतया संवेदनशील कवि-चिंतक-समीक्षक हैं और उन जैसे समीक्षक हिन्दी में अत्यल्प हैं। लेकिन जैसे रामचन्द्र शुक्ल को कहानी-लेखन का शौक हुआ था वैसे ही, शाह को भी है। उनकी इस कहानी में एक समाज विमुख आत्मकेन्द्रित व्यक्ति की आत्म-ग्लनि से युक्त मानसिक कारणों की खोज है, लेकिन यह गौण है। मुख्य है लेखक की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण। सम्पूर्ण कहानी की अपेक्षा विश्लेषण वाले कुछ खास अंश प्रभावित करते हैं। वैसे शाह की आत्मस्वीकृति सही है कि, उनकी समझ में यह कभी नहीं आया क्या लिखना चाहिए, क्या नहीं लिखना चाहिए।

— शितिकंठ मिश्र

आवश्यक सूचना

'नई कहानियाँ' के विज्ञापन व्यवस्थापक श्री अशोक कुमार द्विवेदी की सेवायें समाप्त कर दी गई हैं, अब श्री अशोक द्विवेदी का 'नई कहानियाँ' से कोई सम्बन्ध नहीं है, विज्ञापन दाताओं से विनम्र अनुरोध है कि वे श्री अशोक कुमार द्विवेदी से विज्ञापन सम्बन्धी कोई अनुबन्ध अथवा उन्हें किसी प्रकार का भुगतान न करें अन्यथा 'नई कहानियाँ' तथा इसके मालिकों का कोई उत्तरदायित्व नहीं होगा :—



आपके संपादन में नई कहानियाँ का नया अंक देखकर प्रसन्नता हुई। मेरी शुभकामनाएं।

भागलपुर

डाक्टर बेचन

'नई कहानियाँ' का नया अंक देखा। प्रसन्नता हुई कि अब यह आपके संपादन में निकलेगी।

पटना

सुरेश पाण्डेय

'नई कहानियाँ' मुबारक हो।

अक्टूबर अंक देखा था। प्रवास से आज ही लौटा हूँ और लिख रहा हूँ। सम्पादकीय छोटा पर खूब……

बीकानेर

जेठमल

'नई कहानियाँ' का अक्टूबर अंक देखा प्रथम अंक से ही कहानियों के चयन में आपने जो दक्षता दिखाई है वह पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक है। प्रधान संपादक का कार्यभार संभालने के लिये बधाई स्वीकार उषा जी के उपन्यास की प्रथम किश्त जोरदार रही।

कश्मीर

छत्रपाल

पहले तो तुम मेरी बधाई लो।

नई कहानियाँ, अब एक सुयोग्य हाथ में पूरी तरह से आ गयी। सम्भावनाएं बढ़ गयीं।

हावड़ा

नगेन्द्र चौरसिया

नवम्बर, ७२ अंक में अंग्रेजी कहानी 'मरीचिका' एलेने सीगर सबसे अच्छी रही। इसका अनुवाद भी बहुत ही अच्छी तरह किया गया, पूर्णतया आनन्द देने में सफल रही। 'दूसरे के सुख को प्राप्त करने के लिए उसे मौत के मुँह से भी बचने

के लिए घंटी न बजाना…' स्वार्थ परायणता को नग्न-दर्शित कर दिया गया है।— और फिर भी उस सुख से वंचित…।

मधुकर सिंह की 'अजीजा के खत' भी सीढ़ी के दो तीन डण्डे लुड़कते-डरते चढ़ ही गई है, लेकिन बहुत मुश्किल से 'औरत मर्द' रमेश बतरा एकदम सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते अन्त में लुढ़क कर नीचे गिर जाती है। लेखक की कहानी अपनी शुरुआत अच्छी तरह से प्रकट करती है लेकिन अन्त में कुछ जम सी जाती है।

रजनीश भानु भास्कर
अम्बाला

कुछ समय पहले ही पता लगा कि सम्पादकत्व का भार आपके ऊपर आने वाला है 'नई कहानियां' के अक्टूबर और नवम्बर अंक देखे, एक परिवर्त्तन का आभास हुआ नवम्बर अंक में लक्ष्मीकान्त वर्मा की 'काफी हाउस की एक शाम' मधुकर सिंह की 'अजीजा के खत,' अमर कान्त का 'दुःख' और ऊषा सिन्हा की 'वे कभी नहीं लौटे' पसंद आयी।

उम्मीद करता हूँ कि भविष्य में भी अच्छी से अच्छी सामग्री आयेगी। मेरी ओर से 'नई कहानियां' के इस वातावरण परिवर्त्तन पर शुभ कामनाएँ। –

देवशशि कुमार जमशेदपुर

'नई कहानियां' का दीपावली अंक देखा। आपके सम्पादन में निकला यह अंक देखकर बहुत खुशी हुई। 'नई कहानियाँ' अब नई पीढ़ी के हाथ में आई है, और कहानी के क्षेत्र में नये परिमाण स्थापित करके रहेगी, यह अब दावे के साथ कह सकता हूँ। ऊषाजी के धारावाहिक उपन्यास की दूसरी किस्त पढ़ी, अच्छी लगी। अक्टूबर अंक मिलने पर पहली किस्त पढूंगा। सभी कहानियां एवं स्तंभ स्तर के हैं।

व्यक्तिगत रूप से, आपको हार्दिक बधाई तथा आपका और श्रीमती ऊषा जी का हार्दिक दीपावली शुभ चिंतन।

अशोक प्रभाकर कोयम्बटूर

आप के अल्प सम्पादन काल में प्रकाशित 'नई कहानियाँ' के दो अंक देखने के बाद मेरी धारणा की पुष्टि होती है कि 'नई कहानियाँ' पाठकों के और भी करीब आने की चेष्टा कर रही है। आज की पत्रिकाओं में कहानियों से अधिक महत्व नाम की चिप्पी का होता है। यह एक महज 'कार्मशियल' साहित्यिकता है। इन अंकों में थोड़ी बहुत माटी की गंध पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आशा करता हूँ, 'नई कहानियाँ' की किरणें अपने सौर मंडल से उबर कर विस्तृत क्षेत्र तक पहुँचेगी।

मधुकर कमल
राउर केला

शकुन्तला प्रकाशन की ओर से अरविन्द प्रिंटर्स द्वारा मुद्रित एवं ऊषा सिनहा द्वारा प्रकाशित

NAI KAHANIYAN DECEMBER 1972 Price Re. 1/- only
Regd. No. L. 1751 Regd. No. R. N. 4859-60

कवर मुद्रक · मेफ़ेयलाइट प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद।